मानव मन्दिर

12/90

1990

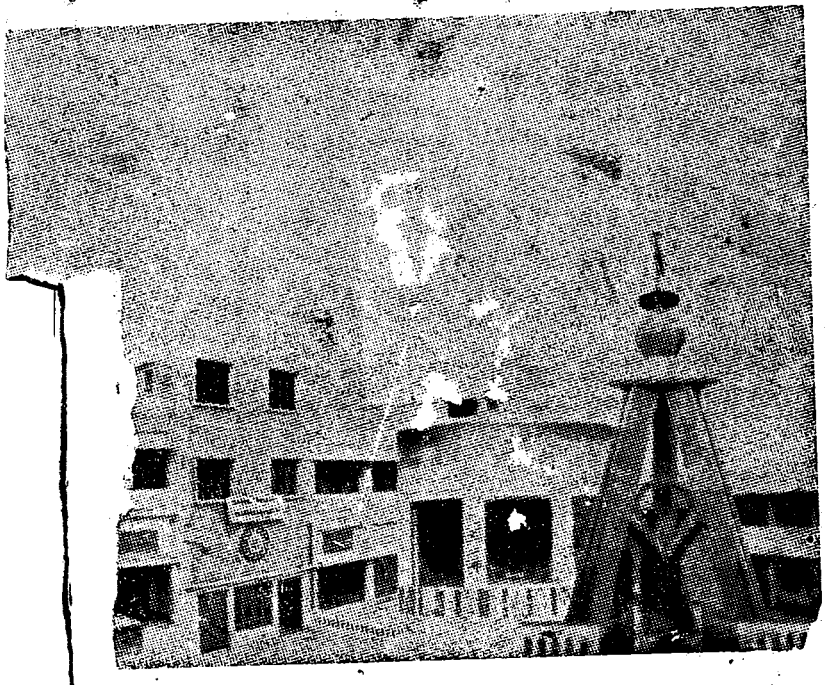

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

सुतैहरी रोड, होशियारपुर

द्वारा अमूल्य भेंट

परम सन्त परम दयाल पं. फकीर चन्द जी महाराज

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur.
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehti Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10.12.90 Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 16-12-1990 को होगा।

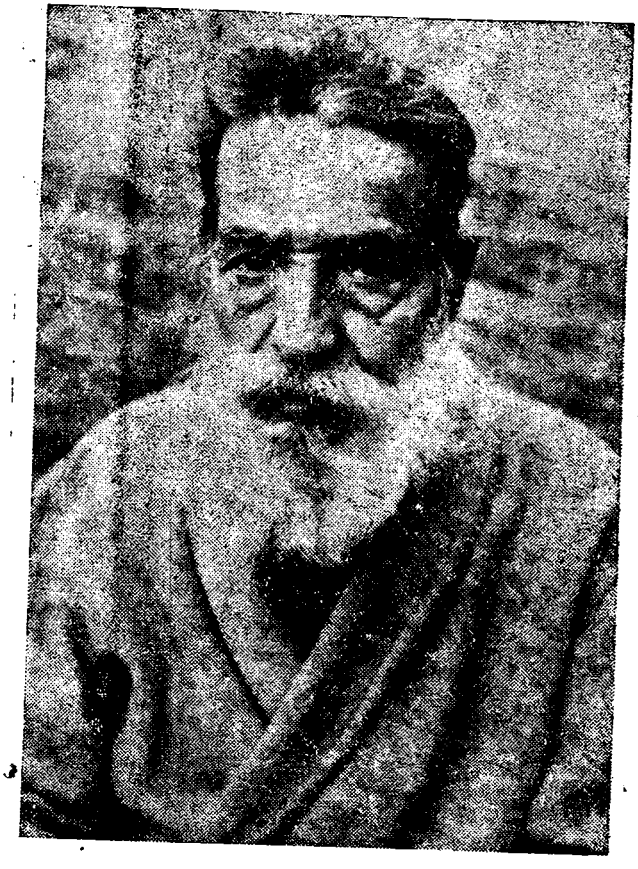

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

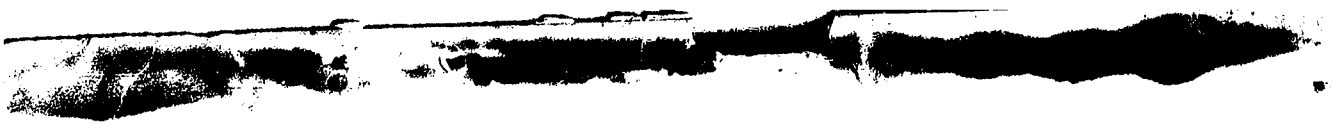

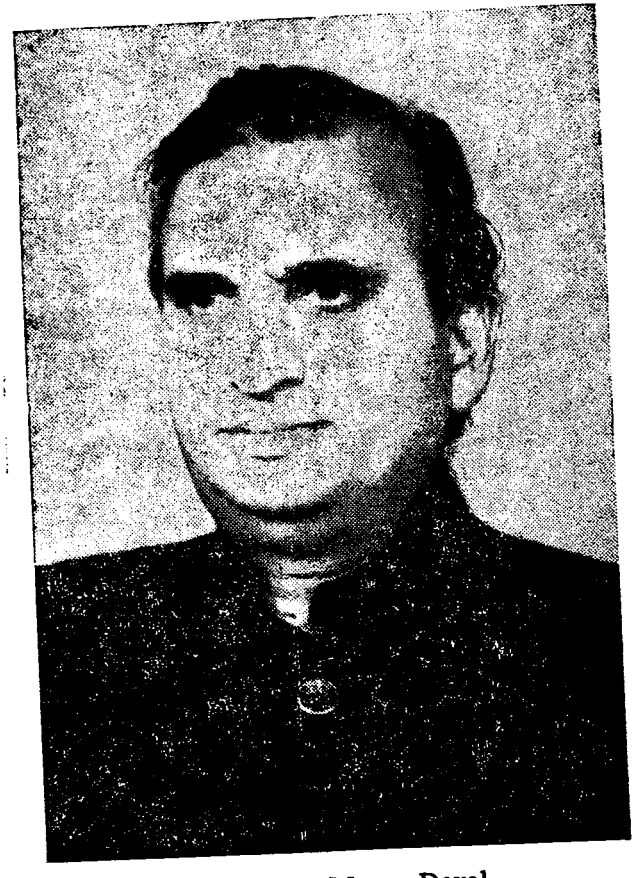

Param Sant Manav Dayal

Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 17	सोमवार, 10 दिसम्बर 1990	संख्या 8

कर्म का मज़हब (धर्म)

हुज़ूर दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

"धर्म" एक बहुत बड़ा शब्द है। कर्म का धर्म और है, उपासना का और है और ज्ञान का और। बन्धन तथा मोक्ष का प्रश्न केवल कर्म के मज़हब में है। ज्ञान और भक्ति दोनों में बन्ध और मोक्ष नहीं। लोगों को सुनकर आश्चर्य होगा कि भक्ति और ज्ञान में मोक्ष क्यों नहीं। भक्ति तो बहुत ही ऊँची वस्तु है। वह तो बन्ध और मोक्ष से भी परे की चीज़ है भक्ति के सम्प्रदाय वालों ने लगभग सभी ने मुक्ति के भिन्न-२ रूप वर्णन किये हैं। आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि यह भक्ति जिसमें मुक्ति का वर्णन आता है, कर्म से मिली हुई है, नहीं तो प्रेम में बन्धन तथा मोक्ष का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। प्रेमी मुक्ति नहीं माँगता, वह तो केवल प्रेम और भक्ति माँगता है। प्रेम के मार्ग में लेना-देना नहीं होता। यह क्रय-विक्रय का सौदा नहीं। उसमें तो ज्ञान तक को प्रीतम के अर्पण कर दिया जाता है। उसमें यह नहीं "हे ईश्वर ! तू मुझे यह वस्तु दे दे, मैं तेरा व्रत रखूंगा। तू मेरी यह आशा पूरी कर, मैं तुझे भेंटें चढ़ाऊंगा।

मुक्ति तथा बन्धन का प्रश्न तो कर्म में ही आता है। जीव अपने कर्मों के बन्धन में बन्धे हुए चिल्ला रहे हैं और उससे छुटकारा चाहते हैं, उससे बचने के भान्ति-२ के उपाय

सोचते हैं। यदि एक उपाय असफल होता है तो दूसरे उपाय के विषय में सोचते हैं। कर्म की मुक्ति भी अस्थायी मुक्ति है। वह स्थायी इसलिये नहीं, क्योंकि वह कर्म से प्राप्त की गई है। कर्म कितना ही बड़ा क्यों न हो फिर भी उसकी एक सीमा होती है। एक भूखे मज़दूर ने भवन-निर्माण का काम किया, भवन बनता रहा उसको मज़दूरी मिलती रही। उसने खाया पिया, वह सोया मौज उड़ाई। भवन का निर्माण पूरा हो गया, उसकी मज़दूरी जाती रही। पहिले की मज़दूरी के पैसे समाप्त हो गये। फिर उसे दूसरे स्थान पर मज़दूरी ढूँढ़नी पड़ी।

इसी प्रकार यज्ञ, हवन, जप, तप, योग, सोग को अमल में लाते हुए अच्छे कर्म किये। ऐसा जीव 'पितृयान' की राह चन्द्रलोक में जाता है वहाँ का खूब सुख भोगता है, परन्तु सुख भोगने के बाद वह फिर नीचे गिरता है। यह सिलसिला उस समय तक बराबर चलता रहता है, जब तक उसका कर्म निष्काम नहीं हो जाता। भक्ति का मार्ग 'देवयान' से होकर जाता है। जीव सांसारिक जीवन समाप्त करके सूर्य-लोक में जाता है, वहाँ वह हंसों से मिलकर फिर आगे जाता है। पीछे हट कर नहीं आता। ज्ञान में तो आने-जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह कर्म, उपासना तथा ज्ञान की अलग-२ सामर्थ्य है।

संसार में इस समय जितने भी धर्म फैले हुए हैं, वह किसी न किसी रूप में हिन्दु धर्म के बिगड़े हुए असत्य तथा प्रतिबिम्बित रूप हैं। हम यह नहीं कहते कि सच्चाई केवल हिन्दुओं से ही सम्बन्धित है। सच्चाई तो हर इन्सान के मन में है। परन्तु जहाँ तक ख्याल जाता है, इस भूमण्डल में आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, भारतवर्ष, सारे देश-देशान्तरों का शिरोमणि है। ऐसा लगता है पहिले इन्सान इसी स्थान

पर पैदा हुए थे। यहाँ से निकल कर वे देश-देशान्तर में फैल गये थे। इस पवित्र भूमि की जलवायु का धर्म ही मूल कारण है। यही कारण है कि ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे धार्मिक विचारों की पूर्ति यहाँ ही हुआ करती है। सभी धर्मों के विचार यहीं से लिये गये।

खोज का क्षेत्र बहुत ही लम्बा-चौड़ा है। प्रत्येक मनुष्य का यह अधिकार है कि वह स्वयं खोज करके किसी परिणाम पर पहुँचे। अवतार इसी ही देश में प्रकट हुए। तीर्थंकरों का क्रम भी इसी ही देश से चला। जैन और अर्हत यहाँ ही पैदा हुए। बौद्धों का प्राकट्य भी इसी ही देश में हुआ और सन्तों ने भी अपनी आध्यात्मिकता को यहाँ ही पनपाया। इस देश की विशेषता है धर्म। हम यह दावा नहीं करते कि दूसरे धर्म सच्चाई से खाली हैं। सभी धर्मों में सच्चाई है। सच्चाई ही सभी का आधार है। बिना सच्चाई के तो कोई वस्तु टिक ही नहीं सकती। सभी धर्मों में सच्चाई तो है परन्तु सच्चाई का प्राकट्य, उन्नति और पूर्ति, जिस प्रकार इस देश में हुई है, होती है या होगी और जिस खुलदिली से यहाँ उसके प्रचार का सामान मिलता है, वह किसी दूसरी जगह नहीं मिलता।

हिन्दु धर्म का विभाजन कर्म, उपासना या भक्ति तथा ज्ञान पर किया गया है। इन्हीं तीनों के सन्दर्भ में सभी धर्म बँट गये हैं या उनका विभाजन सम्भव है। इन तीनों शाखाओं के कर्त्ता-धर्त्ता तीन देवता हैं, क्योंकि बिना देवता के किसीकी भी हस्ती सम्भव नहीं हो सकती। इनके नाम हैं, रूप हैं स्थान हैं। इन तीनों के परे सन्तों का चौथा पद है।

भक्ति और उपासना के कर्त्ता-धर्ता विष्णु हैं। ज्ञान के अधिष्ठाता शिव हैं और कर्म के मुखिया ब्रह्मा हैं। विष्णु क्षीरसागर में शेषनाग के बिस्तर पर लक्ष्मी के साथ रहते

हैं। सागर सृष्टि में सबसे ऊँची जगह पर है, जो सूक्ष्मतया, गुणों तथा रत्नों का भण्डार है। शिव कैलाश पर्वत की चोटी पर साँप और बिच्छु लपेटे हुए पार्वती के साथ रहते हैं। पहाड़ जिनको आम लोग सबसे ऊपर समझते हैं, वास्तव में सृष्टि में सबसे निचले स्थान पर हैं। ब्रह्मा मध्य में सावित्री के साथ, चार वेद हाथ में लिए हुए निवास करते हैं। लोग समुद्र को नीचा तथा पहाड़ को ऊँचा इसलिये समझते हैं, क्योंकि आजकल ऊँचाई और निचाई की माप समुद्र के अनुपात से ही की जाती है। किन्तु यदि आप ध्यान से देखें तो बात समझ में आ जायेगी। समुद्र सिर है, माध्यमिक दर्जा है पेट, जो थोड़ा खाली है। पहाड़ पाँव और स्थूल सृष्टि की नींव हैं और स्थूल जगत् में वे सबसे ही नीचे हैं, जैसे कि तुम्हारे शरीर के पाँव कहने को नीचे हैं।

तीन गुण हैं सत्, रज तथा तम। सत् में प्रकाश और आनन्द है। ब्रह्मा रज है। रज में खींचातानी, संघर्ष, सुख-दुःख तथा चिन्ता है। शिव तम है, जिसमें केवल सत्ता है और कुछ नहीं। पूर्ण हस्ती को ज़ात कहते हैं।

न सत् में क्रियाशक्ति है और न ही तम में। परन्तु इन दोनों के बीच जो क्रियाशक्ति है, वह है रज, जो वास्तव में, सतोगुण तथा तमोगुण को गति देने वाली शक्ति के रूप में अपना काम करता है। यदि रज न हो तो क्रियाशक्ति रहेगी ही नहीं।

अब ज़रा ध्यान से सोचो कि विष्णु और शिव में बन्ध तथा मोक्ष का प्रश्न क्यों नहीं उठता। बन्ध और मोक्ष का प्रश्न तो केवल रज में ही है। सारे अभ्यास, पूजा, भक्ति, बन्दगी, जप-तप, करना-धरना, सभी उसीके ही आधीन हैं। विष्णु तो प्रेम है, जो आनन्द में लीनता की अवस्था है। प्रेम के धर्म में बन्धन और मोक्ष कैसा? शिव ज्ञान

स्वरूप है। ज्ञान में करना-धरना कैसा? करना-धरना तो सब रज शक्ति से सम्बन्धित है और इसीलिये ही इसे कर्म का मार्ग कहा जाता है। दुनिया के जितने भी व्यवहार तथा कारोबार हैं और जितनी भी धर्म से सम्बन्धित वस्तुएँ हैं, सभी का सम्बन्ध रज या कर्म मार्ग से ही है। इसी में ही साहस है, इसी में ही साधना है, इसी में ही भावना है। इसी में ही भाव और विचार हैं। इसी ही के द्वारा सभी सम्बन्ध सम्भव हैं।

जब तक व्यक्ति के दिल में कामना और वासना का प्रभाव रहता है, तब तक उन्नति अवनति, और चढ़ना-उतरना होता रहता है। जब इनका सिलसिला समाप्त हो जाता है, कोई इच्छा दिल में नहीं रहती, तब कुछ करने-धरने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

जो कर्म के अधिकारी हैं, वे किसी न किसी रूप में ब्रह्मा के सच्चे पुत्र बने रहते हैं और मन में इच्छाओं को साथ लिए हुए कर्म करते रहते हैं। परन्तु जीवन की घड़त के साथ, जब सभी अनुभवों के दर्जों की समाप्ति हो जाती है, उस समय जीव को ब्रह्मा के दायरे से बाहर निकलने का अवसर आता है। यह दूसरी बात है कि जीव इस अवस्था से लाभ उठाये या न उठाये। परन्तु यदि वह ऊँची दृष्टि वाला बन कर विष्णु या शिव को इष्ट बना लेता है, तब बन्धन की जंजीर टूट जाती है।

उदाहरणस्वरूप, यूं समझो कि एक भूलभुलैय्यां वाला बहुत बड़ा भवन है, जिसमें चौरीस लाख कोठड़ियाँ हैं। अन्धा जीव सुख की आशा में भटकता-२ प्रयत्न के साथ पाँव मारता हुआ जब सच्चाई के दरवाज़े के निकट आता है, तब उस पेचदार तथा टेढ़े-मेढ़े मार्ग से निकल जाता है। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो उसे फिर दोबारा चक्कर

लगाना पड़ता है।

जिन जीवों में ब्रह्मा का अंश है, वे काल और कर्म के ऋणी हैं। उन्हें यह ऋण किसी न किसी रूप में उतारना ही पड़ता है। उन्हें कर्म करने में रुकावट नहीं डालनी चाहिए, ताकि कर्म करते हुए वे स्वयं समझ-बूझ वाले बनें और सच्चाई या असलियत को समझ सकें। इससे वे स्वयं किसी न किसी रूप में अपने रास्ते को ढूँढने के योग्य बन जायेंगे और यदि जीवों को ज्ञान और भक्ति के गोरखधन्धें में फँसाया गया, तो उन्हें दुःख होगा और काम बनने में समय लगेगा।

परमतत्त्व को बुद्धि से नहीं देखा जा सकता

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

का

मानवता मन्दिर, होशियारपुर में दिसम्बर 1974 में दिया गया

सत्संग

शब्द

असत न होय सत्त कहुँ कैसे, देखा, अनदेखा दोऊ तैसे।
अपनी आँखी मैं नित देखूँ, बिन देखे का भेद न लेखा।
आँख खुली वह दृष्टि में आया, दृष्टि खुली वह गया गँवाया।
ऐसी बात कहँ कोई आय, कोई क्यों उसको पतियाय।
मैं जानूँ रह-२ अनजान, अनजानी कहूँ कैसे जान।

दोहा :—

होने को तो है सही, अनहोनी नहीं होय।
है नाहीं के बीच में, कैसे समझे सोय।

राधास्वामी!

यह वाणी आपने भी सुनी और मैंने भी। बचपन से मुझे मालिक की या यूँ कहो कि मुझे अपनी तलाश थी। उस समय मुझे समझ नहीं थी। मौज मुझे दाता के चरणों में ले गई। सनातन धर्म के संस्कारों के कारण, मैंने दाता दयाल जी महाराज को मालिके कुल, साक्षात् परमेश्वर मानकर उनसे प्रेम किया। मैं जितना अधिक उनसे प्रेम

करता था, उतना ही वह मुझसे कहा करते थे, "फकीर ! तू तो अभी काल और माया के चक्कर में है।" मुझे उस समय इस बात की समझ नहीं आती थी और मैं उन्हें तंग करके कहता रहता था, "महाराज मुझे मालिक के दर्शन करा दो।" उन्होंने मुझे सत्संग कराने की आज्ञा दी और कहा, "फकीर ! मेरी आज्ञा का पालन करते चले जाओ, तुमको मालिक मिल जायेगा।" मैं उनकी आज्ञा का पालन करता चला गया, जिसके फलस्वरूप मैं आज इस अवस्था पर पहुँचा हूँ। आज यह शब्द निकला है :

असत्त न होय सत्त कहूँ कैसे, देखा अनदेखा दोऊ तैसे।

जो व्यक्ति इस वाणी को पढ़ेगा वह क्या समझेगा ? मैं क्या समझता हूँ ? मेरा अनुभव मुझे कहाँ ले आया है ? यहाँ मुझे किसने पहुँचाया है ? ऐ मेरे प्यारे मत्संगियो ! आपने ही मुझे इस अवस्था पर पहुँचाया है, आपका भला हो। जिस अवस्था में अब मैं हूँ, उसे तुम सत् भी कह सकते हो और असत् भी। लेकिन मैं कहता हूँ कि वह असत् नहीं है। वह कुछ है ज़रूर। अब मैं आपसे क्या कहूँ कि वह है, या वह नहीं है— वह है भी और नहीं भी।

यह एक ऐसी समस्या है कि, जिसने इसको हल किया, उसकी अपनी समस्या भी हल हो गई। मैं उसको जानता हूँ (लेकिन न जानने के बराबर)। आखिर वह मेरी अपनी ही तो ज़ात है। वह नित्य और अनन्त है। मगर न वह सत् है और न ही उसे असत् कहा जा सकता है :

अपनी आँखी मैं नित देखूँ, बिन देखे का भेद न लेखूँ।

मैं जब अपने अन्तर जाता हूँ, तो उस नित्य और अनन्त वस्तु को ही देखने जाता हूँ। सारा संसार उसी ही को तो ढूँढ रहा है। जहाँ-२ तक कोई पहुँचता है, वह उसी अवस्था को ही मालिक कह देता है। असली मालिक तो

सभी का आधार और सबका साक्षी है। फिर भी वह होता हुआ भी नहीं है, क्योंकि उसका कोई रंग-रूप नहीं है।

सब कुछ है और कुछ भी नहीं, कहा सुना नहीं जाय।
कथन सुनन बिन जीव से, चुप भी रहा ना जाय॥

जब तक जीवन है, जीव उसमें खेलता है। यदि तुम दूसरों को अपने अनुभव न भी कहो, तो भी अपने अन्तर में तो सोचते रहोगे और अनुभव करते रहोगे। थोड़े दिन हुए मदन सिंह नाम के आदमी ने मुझे फिरोज़पुर से लिखकर पूछा, "महाराज! मेरी यह "हैं" "मैं" कब जायेगी?" मैं पूछता हूँ कि यह "हैं मैं" है क्या? अपने होने का जो भान है, उसे ही "है मैं" या मैं कहते हैं। जब तक उसकी, यानि कि अपने होने की चेतना है, तब तक "मैं" नहीं जाती। योगी, धर्मी, कर्मी, भगत, बाप, बेटा, भाई, अफसर, नौकर सभी "हूँ" और "मैं" में फँसे हुए हैं। यह 'मैं' जायेगी कब? यह तब जायेगी, जब जीव को अपने असली रूप का ज्ञान हो जायेगा। भले ही आप सारा जीवन शब्द सुनते रहो, अन्तर में प्रकाश को देखते रहो, अभ्यास और साधन करते रहो, किन्तु जब तक अपने रूप को तुम नहीं पहचानते अपने अन्तर में स्वयं अनुभव नहीं करते यह "मैं" जाने वाली नहीं है। मेरी 'मैं' चली गई है। कैसे गई वह? आप लोगों के इस अनुभव से ही कि आप मेरा रूप प्रकट कर लेते हैं, जबकि मैं वहाँ होता नहीं। अब जब मैं अपने अन्तर जाता हूँ, तो उस वस्तु को ढूँढ़ता रहता हूँ, जो शब्द को सुनती और प्रकाश को देखती है। जब अनुभव हो जाता है, तो क्या हो जाता है? गूँगे का गुड़। बयान से बाहर, जहाँ जाकर "मैं" समाप्त हो जाती है। लेकिन जब जीव वापिस शरीर में आता है, तो वह भक्ति, योग, साधन आदि तो करता है, शब्द को भी सुनता है और प्रकाश को

भी देखता है, फिर भी उसकी "मैं" वापिस आ जाती है। लेकिन इस अवस्था की उसकी "मैं" पहिली अवस्था की "मैं" से बिलकुल ही भिन्न होती है। पहिली अवस्था में "मैं" में सुख-दुःख, आनन्द और उदासी बनी रहती है और अनुभव हो जाने के बाद की "मैं" में सुख, दुःख, आनन्द और उदासी बनी रहती है। इस "मैं" में, व्यक्ति संसार में रहता है और दुनिया का कारोबार भी करता है परन्तु उसकी "मैं" उसके रास्ते में बाधा नहीं डालती।

बिना चेत, चेतन की रवानी,
अमन समन नहीं मन अनुमानी।
करता धरता सब का भाई,
करता धरता सो ना रहाई।

इस अनुभव की अवस्था के बाद, शरीर सब काम करता हुआ भी कुछ नहीं करता। वह कर्तापने के बन्धन में फँसता ही नहीं। मैंने जब से मानवता मन्दिर बनवाया है, तब से आज तक मेरे स्वप्न में वह नहीं आया, क्यों? क्योंकि इस मन्दिर में मेरी "मैं" नहीं है, मेरा मोह नहीं है। ऐसी अवस्था को जीवन्मुक्ति की अवस्था कहते हैं, या विदेहमुक्ति भी कहते हैं। सब धर्मों का अन्तिम लक्ष्य यही जीवन्मुक्ति ही है, भले ही इसको बयान करने या प्राप्त करने के ढंग अलग-२ क्यों न हों। यह अवस्था साधन, अभ्यास और सत्संग के बिना नहीं मिलती। हजूर दाता दयाल जी महाराज मुझे बहुत ही समझाया करते थे, परन्तु उस समय बात मेरी समझ में नहीं आती थी। अब बात मेरी समझ में आ रही है। मुझे गुरु बनने की लालसा नहीं है। सोचता हूँ यदि गुरु या भक्त बनूंगा तो मुझमें शायद मेरी "मैं" वापिस आ जाये। दाता दयाल जी महाराज ने मुझे एक शब्द में लिखा था :—

खेल खिलाऊँ सुगम सुहेला, सुरत शब्द मत गाऊँ।
काल हिंडोले से तू वाचे, विधि विचित्र समझाऊँ।
कर सत्संग विवेक से, गुरु का गुरु दयाल हितकारी।
साधु बन कर साध ले युक्ति, जा झूले पारी।
नर शरीर सुर दुर्लभ पाया, सत्संगत में आया।
तेरा दाव पड़ा है पूरा, सोच समझ तज माया।

वह माया क्या है ? मन के चक्कर में आकर, प्रकाश, शब्द या किसी और वस्तु को सत् मानना "मैं" है। आप लोगों की और हज़ूर दाता दयाल जी की अपार दया से मेरे तो सब भ्रम चले गये।

आँख खुली तो दृष्टि में आया,
दृष्टि खुली वह गया गँवाया।

आँख खुली, अर्थात् अन्तर में यह समझ आ गई कि प्रकाश को कौन देखता और शब्द को कौन सुनता है। इस अनुभव के होने से पहिले मैं बाहिर में जो कुछ देखता था उसको सत्त मानता था। वह इस अनुभव से समाप्त हो गया।

ऐसी बात कहे जो आय, कोई क्यों उसको पतियाय।

कौन समझेगा इन गूढ़ बातों को ? जो सार वस्तु को जानने, उनको समझाने और विश्वास दिलवाने के लिए, मैंने यह वास्तविकता वर्णन की है और इस भेद को खोला है कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता। जब तक यह ज्ञान नहीं होता कि अन्तर में जो कुछ नज़र आता है, वह सब माया है, तब तक कोई भी व्यक्ति आगे नहीं जा सकता। पहिले सन्त यह भेद इनेगिने अधिकारियों को ही बतलाते थे और मेरा विचार है कि वह ठीक ही करते थे, क्योंकि सभी इस गुप्त रहस्य को जानने के अधिकारी हैं भी नहीं।

मैं भी इस भेद को खोलता नहीं। परन्तु खोल दिया, क्योंकि मैंने यह देखा कि धर्म के ठेकेदार इस भेद को छुपा कर मानव जाति के टुकड़े-२ कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि इन झगड़ों का कारण यह है कि इनको असली मालिक का ज्ञान नहीं है। मैं यह जानता हूँ परन्तु अनजान बनकर रहता हूँ।

होने को तो है सही, अनहोना नहीं सोय।
है नाहीं के बीच में, कैसे समझे कोय॥

होने को तो वह है, अर्थात् मेरे अन्तर में, जो वस्तु प्रकाश को देखती है और शब्द को सुनती है, वह कुछ है तो ज़रूर, मगर उसका कोई रूप नहीं। वहाँ तक जाना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि मन में, जो सांसारिक वासनाएँ हैं, वे आगे जाने नहीं देतीं। यदि आदमी इन इच्छाओं को छोड़ दे, तो वह वहाँ तक ज़रूर पहुँच जायेगा। इसलिये साधन की बहुत आवश्यकता है। पाँच नाम इसलिये दिए जाते हैं कि आप सुमिरन ध्यान करते रहो और जीवन खुशी से गुज़ारो। समय आने पर, तुम्हारी इच्छा के अनुसार प्रकृति आगे जाने का प्रबन्ध करेगी। पाँच नाम सांसारिक जीवन को सुखदायी बनाने के लिए हैं, असली वस्तु है निज नाम :—

बिन कर कर्म करे व्यवहारा।
बिन पग चलै सौ कोस हज़ारा॥
बिना नैन का द्रष्टा भाई।
नाक बिना सूँघे सब भाई॥
बिन जिभ्या बानी बहु गावे।
बिन जिभ्या स्वाद रस खावे॥
बिना काम श्रोता सज्ञानी।
बिना मान के मान अभिमानी॥

बिना देह के देहाधारी ।
बिन आकार के सोई साकारी ॥
बिना रूप का रूप है, बिन अकार सकार।
निराधार आधार जग, सब विधि किया विचार ॥

जो वस्तु हमारे अन्तर में प्रकाश देखती है और शब्द को सुनती है उसका न तो कोई रंग है, न रूप। वह ही शरीर में है, वह ही मन में है, वह ही प्रकाश में है और वह ही शब्द में है। उसकी कोई देह नहीं है, मगर वह देह के न होते हुए भी सब कुछ है और वह सब कुछ करती है।

सुरत हुई अति मगनानी ।
पुरुष अनामी जाय समानी ॥

वहाँ न मैं, न तू, न गुरु न चेला, न कर्म न धर्म, न जप न तप, सब समाप्त हो जायँ।

मुक्त न वह, न शुद्ध अशुद्ध,
ज्ञानी बढ़ वकता, बढ़ बुद्ध,
निरबुद्ध नहीं, बुद्धिमान,
किस विध तिस का करूँ ब्यान।

उसका न कोई रूप न रेखा। वह तो है सुरत और यही सुरत सब कुछ करती है, सबने यह तो बता दिया है कि सुरत सब कुछ करती है, मगर यह नहीं बताया कि तुम इस अवस्था को प्राप्त कैसे कर सकते हो ?

मन के सारे खेलों को छोड़कर, प्रकाश और शब्द में रहने से भी, तुमको यह अवस्था नहीं मिल सकती, क्योंकि प्रकाश और शब्द में, अपनी हस्ती का "हैपना" मौजूद रहता है। जब तक कोई व्यक्ति उस वस्तु की तरफ नहीं जाता, जो प्रकाश को देखती तथा शब्द को सुनती है, उसको इस अवस्था का अनुभव नहीं हो सकता। उसका अनुभव

तो तभी होगा, जब व्यक्ति की जिज्ञासा होगी, वरना नहीं। इसलिये स्वामी जी ने कहा है :—

सुरत - शब्द दोऊ अनुभव रूपा।
तू तो पड़ा भरम के कूपा॥

जो व्यक्ति सिर्फ शब्द को ही पकड़ते हैं और शब्द को ही मुख्य मानते हैं, वे भ्रम के कूप में हैं। जो शब्द को ही ध्येय मानते हैं, वे भी भ्रम में हैं, वे परमार्थ को जानते ही नहीं, क्योंकि शब्द को सुनने वाली चीज़ तो शब्द से अलग है। किसी ने इसे किसी तरह बयान किया, किसी ने इसको वर्णन करने के लिए कोई और शब्द प्रयोग किये। लेकिन किसी ने स्पष्ट वर्णन नहीं किया। अन्तिम अवस्था का तो स्पष्ट वर्णन हो ही नहीं सकता, बस चुप्पी ही आ जाती है :

कर्ता धर्ता सबका भाई, कर्ता धर्ता सो न रहाई।
बिना सीस धारे ही धारा, नहीं असार वह सबका न्यारा॥

वह वस्तु शरीर में आकर, सारे खेल की साक्षी बन जाती है, मगर अपने सिर पर कोई बोझ नहीं लेती। अमल से मैं भी गिर जाता हूँ। यद्यपि मैं इस अवस्था के विषय में जानता हूँ, फिर भी मेरा ज्ञान अभी शत-प्रतिशत परिपक्व नहीं हुआ। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए बहुत साधन करना पड़ता है।

मैं जो यह कहता हूँ कि मैं गिर जाता हूँ, क्यों कहता हूँ ? कुछ समय पहिले की बात है एक सज्जन जिसका नाम रसूल आज़ाद है, मेरे पास आया और उसने मन्दिर में कुछ दान दिया। उस समय मेरे मन में दो सैकिण्ड के लिए खुशी आई। वह जो खुशी मेरे मन में आई, वह मेरा गिरना था। मैं गिरा तो फिर अपने आपको सम्भाला और उसे सारभेद बताते हुए बोला, "मेरे प्यारे रसूल आज़ाद ! तुझे जो कुछ मिला, तेरे काम में जो उन्नति हुई, जो यह तेरा

कारोबार अच्छा चल गया, तुमको बहुत फायदा हो रहा है, ये सब तेरे अपने ही कर्मों तथा अपने ही विश्वास के कारण हो रहा है। मैंने तो कुछ भी नहीं किया और न ही मैं कुछ कर सकता हूँ। सिवाय शुभ भावना के मेरे पास कुछ है ही नहीं। यदि मेरे पास कुछ है भी, तो मुझे उसका पता नहीं।"

सन्त को हर्ष और शोक से रहित होना चाहिए। परन्तु यह सिद्धान्त उसके अपने लिए ही है। संसार के व्यवहार में जो व्यक्ति दूसरे को दुःखी देखकर, उसके दुःख का अनुभव करता है या उसको दुःख से निकलने का कोई उपाय बताता है, या उसकी सहायता करता है, वह सच्चा फकीर है। सन्त तो हर्ष, शोक से ऊपर है। मुझमें अभी भी चार-पाँच प्रतिशत कमी है, इसलिये कई बार गिर जाता हूँ। मगर गिरता कब हूँ? जब गुरु या गुरु का ज्ञान याद नहीं रहता :—

अवगति की गति कठिन है, निरालम्ब निरदेव।
व्यापक सुर अरू असुर में, अदभुत अचरज देव॥

वह वस्तु, जो प्रकाश को देखती तथा शब्द को सुनती है, वह मालिक का तत्त्व है। वह हर जगह और प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। किन्तु जब तक मनुष्य इस ज्ञान को पूरा हासिल नहीं करता और ऐसी अवस्था में रहता नहीं, वह गिरता रहता है। वह जीवन्मुक्त अवस्था में नहीं आ सकता। ज्ञान की दृष्टि से चाहे कोई कुछ भी क्यों न कहता रहे, मैं इस संदर्भ में भक्ति मार्ग का ही अनुयायी हूँ, क्योंकि ज्ञान का मार्ग बहुत कठिन है। ज्ञान या अनुभव की अवस्था में हर समय रहना और ठहरना कठिन ही नहीं, असम्भव है। मैं उस शक्ति का सहारा लेता हूँ, जो सुरत का भण्डार है। यदि किसी कारण जीव में गिरावट आ जाती है और उस गिरावट का मन में, जो शोक होता है, वह भक्ति के

सहारे समाप्त हो जाता है। इसलिये ही सन्तों ने ज्ञान मार्ग की जगह भक्ति मार्ग को बहुत महत्त्व दिया है। भक्ति मार्ग ज्ञान मार्ग से सरल है।

अगर आप में से कोई सुख और दुःख का अनुभव नहीं करता तो यह बहुत ही अच्छा है, आप महान् हो। परन्तु यह सुख-दुःख के परे की अवस्था साधन और अभ्यास के बिना प्राप्त की नहीं जा सकती। पहिले सुमिरन तथा ध्यान है, फिर प्रकाश और शब्द का साधन है। उसके बाद अनुभव हो जाने के बाद तुम अपने रूप में ठहर सकोगे।

फूल मध्य ज्यों वास समाना।
मेंहदी की लाली परमाना॥
चकमक मध्य आग विराजा।
राज विचित्र करे महाराजा॥

चुम्बक में आग है, मेंहदी में लाली है, किन्तु जब तक रगड़ो नहीं, वह प्रकट नहीं होगी। इसी प्रकार जब तक आप साधन, अभ्यास नहीं करोगे, वह वस्तु तुम्हें प्राप्त नहीं होगी। ज्ञान की दृष्टि से, चाहे कोई कुछ कहता फिरे :—

प्राण का प्राण, जान का जान, देह अदेह, विदेह वखाना।
धर्म अर्थ काम का दाता, अधिकारी को मुक्ति दिलाता।
काम,अकाम, अनर्थ, अर्थ जो, मुक्त अमुक्त है धर्म भर्म जो।
सब कुछ है और कुछ भी नहीं, कहा सुना नहीं जाय।
कथन सुनन बिन जीव से, चुप भी रहा न जाय।
देश, अदेश विदेश महाना, रूप अरूप स्वरूप वखाना।
अगुण सगुण गुणवान है सोई, मायातीत शक्तिधर सोई।
जड़ नहीं चेतन कैसे कहूँ, जड़ चेतन लखी मौनी गहूँ।

मौन हो जाना अन्तिम अवस्था है। एक मौन-वाणी का होता है। लेकिन यह पूरा मौन नहीं है। पूरा मौन वह है कि मन से संकल्प ही न करे। प्रकाश, अप्रकाश हो जाय

और शब्द अशब्द हो जाय। वह हमारी आद अवस्था है, जहाँ से हम आये हैं। जब तक हम बोलते रहते हैं, हम निचली अवस्था में हैं। मगर जब तक शरीर है, हम बोलने के लिए विवश हैं। शब्द सिद्ध करता है कि आज तक कोई भी सन्त पूर्ण मौन को नहीं रख सका। इसलिये कहता हूँ जब तक यह जीवन है, उस अवस्था को ध्यान में रखो और इस संसार में काम करो। यही जीवन्मुक्त अवस्था है। मैं अपनी त्रुटियों को छुपाता नहीं, इसलिये तो मैं कहता हूँ कि भई मैं भी बहुत बार गिर जाता हूँ। मुझे भी कभी-२ क्रोध आ जाता है। अगर मुझे क्रोध नहीं आये, तो मैं समझूँ कि मैं गिरता नहीं। अगर मन्दिर में कोई चार पैसे दे जाता हैं, तो मैं खुश हो जाता हूँ। यह गिरना नहीं तो और क्या है? यदि किसी को मौत पर शोक नहीं हो, तो समझो कि वह गिरा नहीं, महान् है। मैंने अभी-२ आपको बताया कि जब रसूल आज़ाद ने मन्दिर को कुछ पैसे दिये तो मुझे खुशी हुई, वह मेरा गिरना ही था। सन्त गति में रहना बहुत कठिन है। मैं गिरता रहता हूँ, मगर फिर सम्भल जाता हूँ।

जड़ चेतन में व्यापा सोई, बिन आधार ठहरे नहीं कोई।
स्वः तपः महः जनः ऋषि बखाने,सोई भूः भुवः मुनि जन जाने।
जोत निरंजन सहस्रदल त्रिकुटि पद ओंकार।
सुन्न महासुन्न हंस गति, भँवर का सोहंग सार।
नहीं विराट् नहीं अव्याकृत, कहो हिरण्यगर्भ करे चरित्र।
कर चरित्र सब में मन भाया,सबसे मिलजुल रह भल गाया।
अलग बिलग ताकि गति नाहीं, प्रतिबिम्बित रहे बुद्धि माहीं।
मति नहीं लख सुमति लख पाए,विनती निगम गम अति बतावे
एति नेति दोनों से न्यारा, पार अपार बार के बारा।

सत् पुरुष सतलोक का, अगम अलख निरबाण।
राधास्वामी धाम में, राधास्वामी जान।

उस परमतत्त्व को बुद्धि से नहीं झाका जा सकता, केवल शुद्ध विचार उसे समझ सकता है। मैं उस तत्त्व को किसी को दिखा नहीं सकता। हाँ, दिखाने का गुर बता सकता हूँ। जो चीज़ प्रकाश को देखती तथा शब्द को सुनती है, वह है सार और वही सार ही सब का बोधमान करता है। जिसको अपने असली रूप का ज्ञान हो जाय, वह फिर मन के चक्कर में नहीं आता और न ही उसको हर्ष तथा शोक सताता है। मैं तो भई अब भी कभी-२ फँस जाता हूँ। हाँ, यत्न ज़रूर करता हूँ कि न फँसूँ।

सबको राधास्वामी !

राधास्वामी मत और सांख्यदर्शन का सार

(गतांक से आगे)

मसन्त हज़ूर मानव दयाल जी महाराज

पुरुषतत्त्व प्रकृति से बाहर अपने आप में स्थाणु और शुद्ध चेतन अवस्था में रहता हुआ तीन गुणों से परे रहता है। प्रकृति को इसलिये परिवर्तनशील गत्यात्मक किन्तु चेतना-हीन जड़ कहा गया है। पुरुष को चैतन्य अपरिवर्तनशील शुद्ध तत्त्व माना गया है। क्योंकि पुरुष व्यापक होते हुए भी साधारण दृष्टि से गतिमान नहीं है, इसलिये उसे लंगड़ा कहा जाता है। प्रकृति चैतनाशून्य होने के कारण अन्धी कही जाती है। जिस प्रकार एक हृष्ट-पुष्ट अन्धा व्यक्ति चैतन्य आँखों वाले व्यक्ति के सहयोग से उसे कन्धे पर उठाकर घोर वन से पार हो सकता है, उसी प्रकार अन्धी गतिमान प्रकृति लंगड़े चैतन्य पुरुष के सहयोग से सृष्टि की रचना करती है। वास्तव में, चैतन्य पुरुष दूर से चेतना की किरण को फेंकता है। उसके प्रकाश का प्रतिबिम्ब पहिले-पहिल रजोगुण पर पड़ता है और रजोगुण गतिमान होकर सतोगुण और तमोगुण को क्रियाशील करता है। पुरुषतत्त्व उसी प्रकार दूर से प्रकृति को गतिमान करता है। जैसे एक चुम्बक दूर से ही लोहे को गतिमान कर देता है।

पुरुष के इस व्यवहार से प्रकृति में हिलोर होने के

कारण इस ब्रह्माण्ड में सबसे पहिले जो तत्त्व विकसित होता है, उसे महत् एवं ब्रह्माण्डी बुद्धि कहा जाता है प्रसमें सतोगुण प्रधान होता हैं और रजोगुण तथा तमोगुण की मात्रा बहुत कम होती है। इस प्रकार बुद्धि में चेतना, ज्ञान और वैराग्य के गुण उत्पन्न हो जाते हैं। प्रकृति के इस विकास में इन तीनों गुणों में अहंकार एवं 'मैंपना' पैदा हो जाता है। सतोगुण में सात्त्विक अहंकार, रजोगुण में राजस अहंकार और तमोगुण में तामस अहंकार पैदा हो जाता है।

सतोगुण के अहंकार से मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ पैदा होती हैं। तमोगुणी अहंकार से पाँच सूक्ष्म तत्त्व एवं तन्मात्र उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी तन्मात्र में गन्ध, जल तन्मात्र में रस, अग्नि तन्मात्र मैं रूप, वायु तन्मात्र में स्पर्श और आकाश तन्मात्र में शब्द के गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इस तन्मात्रों के परस्पर मेल से ही स्थूल शरीर के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश एवं स्थूल पाँच तत्त्व निर्मित हो जाते हैं। यही पाँच तत्त्व स्थूल शरीर के पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय बनते हैं। प्रकृति और पुरुष के इसी विकास को गुणों की विषम अवस्था एवं सृष्टि कहा जाता है। इस प्रकार सृष्टि में पच्चीस तत्त्वों की गिनती की गई है : पुरुष, प्रकृति, महत् अथवा बुद्धि, अहंकार (चार) मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियां पाँच कर्मेन्द्रियां (ग्यारह) पाँच तन्मात्र सूक्ष्म तत्त्व और पाँच स्थूल तत्त्व (दस) कुल मिलाकर ये पच्चीस तत्त्व हो जाते हैं।

———

सत्संग परमसन्त सद्गुरु
हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मोदी नगर, दिनांक 17-8-88

शब्द

सुनो मेरे भाई कथा यह पुरानी ।
नहीं जानते आजकल जिसको ज्ञानी ॥
नहीं ब्रह्म माया में है भेद कोई ।
जो है ब्रह्म माया भी है वस्तु सोई ॥
जो सत् है वही सुख वही चित् है प्यारे ।
कथन के लिए तीन हैं एक सारे ॥
करम सत् में और चित् में है ज्ञान की गम ।
यही आत्मा में है आनन्द उत्तम ॥
जहाँ सत् वहीं, वहीं सुख है व्यापा ।
जो तीनों को समझे लखे अपना आपा ॥
इसी आपे का रूप अपना समझना ।
समझकर न अज्ञान में फँस भटकना ॥
करे गुरु की संगत समझ तब ये आवे ।
मिले राधास्वामी जुगत योग पावे ॥
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पुर्णमुदत्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, उपस्थित सत्संगी भाइयो और बहनो।

कल के सत्संग में मैंने आपको मालिक के स्वरूप के बारे में कुछ बताया। मालिक का जो स्वरूप है, वही आपका भी स्वरूप है। सभी धर्म इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस जगत् में मालिक का सम्पूर्ण नमूना यदि कोई है, तो वह मनुष्य ही है। इस जगत् के अन्दर सर्वश्रेष्ठ तत्त्व मनुष्य ही है। हज़ारों साल पहिले नैमिषारण्य बन में ऋषियों की सभा हुई। इस सभा के अध्यक्ष ऋषि वेदव्यास जी थे। वेदव्यास जी पराशर ऋषि के पुत्र थे। इस सभा में एक सवाल किया गया कि इस ब्रह्माण्ड में सर्वश्रेष्ठ चीज़ क्या है? एक ऋषि उठा, उसने कहा "इस जगत् में परात्पर ब्रह्म परमतत्त्व श्रेष्ठ है।" सारी सभा में सन्नाटा था। सभी सोच रहे थे कि परात्पर ब्रह्म तो इस जगत् में है ही नहीं, तो वह जगत् में श्रेष्ठ कैसे हुआ? जब सब चुप रहे तो चुप का अर्थ था कि यह उत्तर किसी को स्वीकार नहीं था। अब दूसरा ऋषि उठा और उसने कहा "प्रकृति सर्वश्रेष्ठ है। प्रकृति से सारा जगत् पैदा होता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी उसी से पैदा होते हैं। यह मालिक की सृजनशक्ति है। परमतत्त्व तो इस जगत् में नहीं है, लेकिन उसकी Radiation से जो सबसे श्रेष्ठ वस्तु पैदा हुई, वह प्रकृति है और प्रकृति राधा है। इस उत्तर पर भी सारे ऋषि मौन थे। माया ब्रह्म के साथ है। जब ब्रह्म नहीं है, तो माया कैसे श्रेष्ठ है? यह जवाब किसी को पसन्द नहीं आया। सभा में सन्नाटा छा गया। तीसरा ऋषि उठा उसने कहा, "देखो, शक्ति शिव की है। शिव श्रेष्ठ हैं, विष्णु श्रेष्ठ हैं और ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं।" लेकिन इस उत्तर को भी स्वीकार नहीं किया

गया। जब किसी से भी उत्तर नहीं मिला, तब इस सभा के अध्यक्ष ऋषि व्यास जी ने कहा इस "जगत् के अन्दर तुम्हें सबसे बड़ा भेद बताना चाहता हूँ और वह भेद यह है कि इस जगत् के अन्दर मनुष्य से अधिक कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं है।"

आप मनुष्य हैं, मानव हैं। मानव होने के कर्म और अकर्म हैं। परम दयाल जी महाराज ने मेरा नाम मानव दयाल रख दिया। लोग समझते हैं कि मानव का अर्थ है अच्छे-२ कार्य करना, मीठा बोलना। बस यही मानवता है। अरे मानवता का अर्थ है, पूर्णता। देवता पूर्ण नहीं हैं, मनुष्य पूर्ण है। देवता पूर्ण क्यों नहीं हैं? देवता इसलिये पूर्ण नहीं हैं क्योंकि उनको संकल्प की स्वतन्त्रता नहीं है। सूर्य देवता की शक्ति इतनी अधिक है कि यदि पृथ्वी पर आ जाये, तो सब कुछ समाप्त हो जाये। लेकिन सूर्य देवता के पास संकल्प की शक्ति नहीं है न इतनी स्वतन्त्रता है कि किसी सद्गुरु के पास जाकर, उससे ज्ञान लेकर मालिक में मिल जाये। जब तक प्रलय नहीं होगी, तब तक वह परमतत्त्व के दर्शन नहीं कर सकता। इसलिये मनुष्य श्रेष्ठ है। मानव पूर्ण है। मैंने कहा—

'पूर्णमदः पूर्णमिदं' यह बात ऋषि अनुभव करने के बाद कह रहा है। सनातन धर्म और सन्तमत एक है बल्कि सनातन धर्म के अन्दर जो सन्तमत बिखरा हुआ है, उसे सन्तों की वाणियाँ पूरा नहीं कर सकीं। वेद, उपनिषद् तथा शास्त्रों के अन्दर ऋषियों ने अलग-२ व्याख्या की है। शास्त्रों के अन्दर पूर्णता का चित्रण तो पूरा है, लेकिन वह चित्रण अलग-२ दृष्टि से है। परम दयाल जी महाराज से मेरा प्राईवेट सत्संग होता था। उन्होंने कहा, शर्मा! मैं सन्तमत में मालिक को ढूँढ़ने आया था। मैं ब्राह्मण था। संस्कार

सनातन धर्म के थे। वेदशास्त्रों को मानने वाला था। स्वामी जी महाराज की मैंने वाणियों में पढ़ा कि पराशर ऋषि नहीं पहुँचे। उस मालिक की महिमा ऋषि, मुनि नहीं जान सके। मैं यह बात सहन नहीं कर सका। भला कौन-सा ब्राह्मण इस बात को सहन कर सकना है? मैंने निश्चय किया कि मैं इस रास्ते पर चलकर दुनिया को सच्चाई बताऊंगा।" सन्त ईश्वर, परमेश्वर से ऊँचा है। सन्त मनुष्य है। देवता ऊँचे नहीं हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी ऊँचे नहीं। शब्द भी श्रेष्ठ नहीं। मैंने एक सत्संग में कहा था, कि जिस राधा की लोग दुहाई देते हैं, वह भी इस जगत् में श्रेष्ठ नहीं है। जगत् में तो वह है ही नहीं। जगत् में तो उस मालिक का कारण रूप है। मैंने महाराज जी को कहा कि ईश्वर, परमेश्वर, परात्पर ब्रह्म कुछ नहीं। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं कि वह है ही नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं, लेकिन इस जगत् के अन्दर वह हमें क्या लाभ पहुँचा सकते हैं? यह तीनों इसलिये पूर्ण नहीं हैं क्योंकि यह मालिक के साथ रहते हुए भी उस समय तक मालिक में विलीन नहीं हो सकते, जब तक प्रलय नहीं आयेगी, लेकिन मनुष्य चाहे वह कितना भी गिरा हुआ क्यों न हो चाहे कितना भी अज्ञानी क्यों न हो, चाहे उसने समाधि ध्यान नहीं लगाया, लेकिन वह परमतत्त्व का अंश है, वह इसी जन्म में परमतत्त्व में मिल जायेगा। इसी कारण सन्तों ने कहा है कि सन्त ईश्वर, परमेश्वर से परे है। दाता दयाल जी ने कहा है :—

न मैं राम कृष्ण का सेवक, ईश ब्रह्म नहीं जानूं।
मैं तो नाम फकीर दिवाना, सबसे बढ़कर मानूं॥
जो फकीर मोहे दर्शन देवे, अपना भाग्य सराहूँ।
अपने तन के चाम की जूती, पग फकीर पहराऊं॥

फकीर मनुष्य के चोले में है न। "ईश ब्रह्म नहीं

जानूँ।" ईश्वर इस जगत् को कण्ट्रोल करने वाला है। ब्रह्म-प्रकाश है जिससे ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं। वह देवता के रूप में मेरे किसी काम के नहीं। मैं उस परमतत्त्व को श्रेष्ठ मानता हूँ जो फकीर का चोला धारण करके इस जगत् में आया है। लोग कहते हैं कि पराशर ऋषि गिर गये। अरे ऋषि का गिरना भी ऊपर चढ़ना होता है। मैं विरोध नहीं कर रहा, आपको सच्ची बात बता रहा हूँ। पराशर ऋषि ने एक मल्लाह की लड़की से आकर्षित होकर विवाह किया। लेकिन वह मल्लाह की लड़की भी तो परमतत्त्व थी। इस विवाह से कौन पैदा हुआ? ऋषि वेदव्यास जी, जिन्होंने चारों वेदों की रचना की। मैं आपको महाराज जी और अपने प्राईवेट सत्संग के बारे में बता रहा था। मैंने महाराज जी को कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैंने वेदशास्त्र भी पढ़े हैं। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि स्वामी जी महाराज ने ठीक कहा है :—

षट शास्त्र बुद्धि चलाया अंध मिल धूल उडाया।

मैं जिस विद्यागुरु पंडित मोती लाल जी शास्त्री से पढ़ा वह बहुत बड़े विद्वान् थे। उन्होंने कह दिया कि "यह 6 शास्त्र जो हैं—सांख्य, योग, मीमान्सा वेदान्त, न्याय, वैशेषिक यह सनातन धर्म को ग्रह लगे हुए हैं। इन शास्त्रों में बेवकूफी की बातें हैं।" लेकिन मैं यह नहीं कहता। जिन्होंने इनको बनाया, उन्होंने बेवकूफी नहीं की। उन्होंने तो अनुभव के आधार पर 6 शास्त्रों की रचना की है। लेकिन आगे आने वाले शिष्यों ने अनुभव नहीं किया और 6 शास्त्रों की ग़लत व्याख्या करते रहे। अब शंकराचार्य सच्चे थे, उन्होंने अनुभव किया और अन्त में उनका शरीर गायब हो गया। लेकिन उनके बाद जो शिष्य हुए, उन्होंने अनुभव तो किया नहीं, और वेदान्त का ग़लत प्रचार किया

मैंने महाराज जी को कहा कि महाराज जी ये जो शास्त्र हैं, ये दृष्टियाँ हैं। इन 6 शास्त्रों में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त में परमतत्त्व की सच्चाई है। लेकिन इनका आपस में मतभेद है। सांख्य कहता है कि प्रकृति और पुरुष दो हैं और वेदान्ती कहता है कि परमतत्त्व एक है। सांख्य ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानता। अद्वैत वेदान्त भी ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानता। अब इनमें आपस में मतभेद क्यों हुआ? क्योंकि सांख्य ने जो रास्ता बताया, उस पर दूसरे शिष्य ने योग-साधना के द्वारा अनुभव किया, उसको पहिचाना नहीं। इसी प्रकार वेदान्तकारों ने तो ठीक बताया लेकिन आगे उसका अनुभव नहीं किया गया। यदि कोई सन्तमत की सच्चाई को जानना चाहता है, तो उसे अद्वैत वेदान्त पढ़ना चाहिए तो इन शास्त्रों के सिद्धान्त, तथा उद्देश्य ठीक थे, अगर उन पर अमल नहीं करोगे, तो शास्त्रकारों का दोष नहीं है। यही बात राधास्वामी मत में हो रही है। परम दयाल जी महाराज ने अनुभव करके कहा कि राधास्वामी मत में जो मालिक को मिलने के असूल हैं, वह बिलकुल ठीक हैं। मैंने उनको अपनाकर देखा है, वह सही उतरते हैं और वही असूल सनातन धर्म के भी हैं। अब जो उन असूलों पर नहीं चल रहे हैं, वह लकीर के फकीर बन रहे हैं और कहते हैं कि वेदशास्त्र कुछ नहीं हैं। वे बिलकुल गलत रास्ते पर चल रहे हैं। उनके सिद्धान्त ठीक हैं। सद्गुरु, सत्संग, सतनाम ठीक है। तीन बन्द ठीक हैं। भूर् भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्यं भी ठीक हैं। लेकिन भूल इस बात में कर रहे हैं कि मेरे डेरे का राधास्वामी मत अलग है। उसके डेरे का राधास्वामी मत अलग है। यही भूल शास्त्रकारों के चेलों ने की। न्याय तर्कशास्त्र है। किसी भी धर्म के सिद्धान्तों को, असूलों को अन्धाधुन्ध नहीं मानना चाहिए। आज बुद्धि का युग है।

आज युवा पीढ़ी वृद्धापीढ़ी को नहीं मानती। इसका कारण है कि युवापीढ़ी बुद्धि के आधार पर तर्क करती है और वृद्धापीढ़ी कहती है कि तर्क मत करो, गुरु जी जो कह रहे हैं, सच कह रहे हैं। लेकिन मैं तर्क करने के लिए तैयार रहता हूँ। तो न्याय दुद्धि का तर्क है। न्याय कहता है कि यदि तुम्हारा विचार व्यवस्थित होगा, तो सही होगा, वरना ग़लत होगा। न्याय ईश्वर के अस्तित्व के तर्क देता है। जो चीज़ तर्कसंगत नहीं है, उसको कोई नहीं मान सकता। मनुष्य को इसलिये श्रेष्ठ माना है क्योंकि उसके अन्दर विवेक है।

गुरु पशु नर पशु तिरिया पशु वेद पशु संसार।
मानुष वाको जानिये, जाके विवेक विचार॥

गुरुपशु कौन हैं? गुरुपशु वह है जो अपने गुरु पर अन्धविश्वास करता है और कहता है कि मेरा गुरु फलां डेरे का है। मेरा ही गुरु सच्चा है, बाकी सब गुरु झूठे हैं। इस विचारधारा के लोग गुरुपशु हैं।

नरपशु वह लोग हैं जो बड़े-२ अफसरों की खुशामद करते रहते हैं। मैं आपको अपना अनुभव बताता हूँ। 1985 में आन्ध्रप्रदेश के हैदराबाद विश्वविद्यालय में दार्शनिकों ने दर्शनशास्त्र की हीरकजयन्ती मनाई। इस सम्मेलन का मुझे अध्यक्ष चुना गया। इस सम्मेलन के उद्घाटन के लिए प्रधान मन्त्री राजीव गाँधी को आमन्त्रित किया गया। बड़े दूर-२ से बड़े-२ विद्वान् इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए आये। मैं अपना अध्यक्षीय भाषण पहिले ही लिखकर ले गया था। राजीव गाँधी जब आया, तो लोग खुशामद करने लगे। अपने-२ भाषण में कोई उन्हें वज़ीरे आज़म कहता था, तो कोई प्रधान मन्त्री जी कहकर सम्बोधित कर रहा था। जब मैं बोलने के लिए खड़ा हुआ तो मैंने कहा, "मेरी

अपनी ही आत्मा के स्वरूप, राजीव गाँधी, प्यारे भाइयो और बहनो।" राजीव गाँधी को यह सम्बोधन बहुत ही अच्छा लगा। जब मैं भाषण देकर उतरा तो लोग कहने लगे कि आपने बहुत अच्छा बोला लेकिन आपने मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप राजीव गाँधी क्यों कहा?" मैंने कहा "मैं तो सब जगह ऐसा ही कहता हूँ। मैं नरपशु तो हूँ नहीं।" खुशामद करने वाले लोग नरपशु हैं। तिरियापशु वे लोग हैं जो काम में रत हैं अर्थात् कामनाओं के दास हैं। वेदपशु वह लोग हैं जो केवल किताबों को ही सब कुछ मानते हैं। किताबों में जो लिखा है वही ठीक है।

'मानुष वाको जानिये जामें विवेक विचार।'

विवेक क्या होता है? बुद्धि विवेक करती है सत् और असत् में, स्थायी सुख और अस्थायी सुख में अन्तर जानता जानती है? इसलिये मनुष्य श्रेष्ठ है। गौतम ऋषि ने कहा कि बुद्धि के आधार पर आप न्याय कश्ते-२ अन्त में मालिक को मान जाओगे। यह 6 शास्त्र अलग-२ दृष्टियाँ हैं लेकिन सारे शास्त्र वेद को मानते हैं। वेद उस परमतत्त्व का ज्ञान हैं, जिसको स्वामी जी महाराज ने कहा कुछ नहीं, कुछ नहीं कुछ नहीं था सो वेद के दसवें मण्डल में नासदीय सूक्त है। उस सूक्त में ऋषि वही बात कह रहा है, जो स्वामी जी महाराज ने कही है, "आरम्भ में न कोई देवी थी न देवता थे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी नहीं थे, न सत् था न ससत् था।" महाराज जी कहने लगे कि यह बिलकुल सही है। ये 6 शास्त्र अपने आप में सही हैं लेकिन जब इन पर अलग-अलग दृष्टिकोण की कट्टरता आ जाती है, तब ये बेवकूफी करते हैं। अब स्वामी जी की वाणी सुनिये :—

'षट शास्त्र बुद्धि चलाया अन्ध मिल धूल उड़ाया।'

जब उन्होंने अनुभव न करके, अपनी बुद्धि के आधार पर बहस की तो अन्धमिल धूल उड़ाना हुआ कि नहीं !

एक बार चार अन्धे एक हाथी को देखने गये। एक ने हाथी की पूंछ पकड़ी, दूसरे ने हाथी की टाँग को पकड़ा, तीसरे ने उसकी सूंड को पकड़ा और चौथे व्यक्ति ने उसके शरीर और पेट को हाथ लगाया। अब उन चारों से पूछा गया कि हाथी कैसा है ? पूँछ पकड़ने वाले व्यक्ति ने कहा कि छड़ी जैसा है, टाँग पकड़ने वाले व्यक्ति ने कहा कि स्तम्भ जैसा है। सूंड पकड़ने वाले व्यक्ति ने कहा कि अजगर जैसा है और पेट को हाथ लगाने वाले ने कहा कि हाथी तो ड्रम जैसा है। अब वह चारों अलग-२ तो ठीक थे। क्योंकि उन्होंने पूरा हाथी तो देखा नहीं था। अगर उन चारों को आँखें मिल जातीं फिर तो कह देते कि हम सब ठीक हैं। यह 'अन्धमिल धूल उड़ाना' है। परम दयाल जी महाराज को यह बात सुनकर बड़ी तसल्ली हुई। कहने लगे कि अब मुझे पूरा यकीन हो गया कि तू सच्चाई को पूरी तरह से बयान करेगा।

मैं आपको बता रहा था कि वेदों के अन्दर वेदान्त के अन्दर तथा सभी धर्म अन्त में इसी सच्चाई को मानते हैं कि जगत् के अन्दर मनुष्य ही श्रेष्ठतम वस्तु है। तो इस सच्चाई को समझाने के लिए परमतत्त्व आधार जो अमूर्त्त है, जिसे हम देख नहीं सकते, जो ऊपर बैठा हुआ है, वह हमारें किसी काम का नही। वह परमतत्त्व आधार हमारे लिए काम का कब होगा ? जब वह मनुष्य के चोले में आयेगा। इसलिये मनुष्य श्रेष्ठ हैं, देवता श्रेष्ठ नहीं हैं।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

वह मालिक पूर्ण है परिपूर्ण है और हम उसीसे निकले हैं। हमें उसीने पैदा किया है। वह भी पूर्ण है और हम भी

पूर्ण हैं। क्यों ?

'पूर्णात् पूर्णमुदत्यते' जो चीज़ पूर्ण से आई है, वह पूर्ण ही कही जायेगी। तुम भटक रहे हो, भूल रहे हो कि तुम कौन हो।

'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।'

उस पूर्ण को जानने के बाद, मनुष्य पूर्ण के पास पहुँच जाता है। यह है तुम्हारी पूर्णता।

इस पूर्णता के अन्दर जगत् भी आ जाता है। माया भी आ जाती है। माया भी पूर्ण है। माया में भी कोई अधूरापन नहीं है। उसके समझने में ग़लती है। यह सारा जगत् माया अर्थात् राधा ही तो है। अगर राधा पूरी नहीं होती, तो सन्तमत स्वामी-२ ही कहता, राधास्वामी नहीं कहता। उस मालिक ने अपनी पूर्णता को तब दिखाया, जब उसने शरीरधारी मनुष्य को पैदा कर दिया। उसने अपने अंश को पूर्ण तथा मुकम्मल बना दिया। मालिक ने राधा के रूप में सुन्दर जगत् बनाया, कोटि-२ ब्रह्माण्ड बनाये जो उसका अंग हैं। मनुष्य ही उस पूर्ण के अद्भुत रूप को देख सकता है, उस पूर्ण को पा सकता है, देवता नहीं।

स्वामी बैठक अद्भुती, राधा निरखनहार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार॥

वह अद्भुत है। उसको देखने से बुद्धि चकित हो जाती है, हैरान हो जाती है, परेशान हो जाती है। उसको कोई समझ नहीं सकता।

गुरु महिमा जाने न ऋषिमुनि शिव शारद शेष की पार नहीं
संसार असार से प्रीत छुटी गुरु भक्ति सम कुछ सार नहीं॥

उस परमतत्त्व जो देखने का अधिकारी कौन है? उसको देखने का अधिकार देवताओं को नहीं है, शारद तथा

शेष को भी नहीं है। उस परमतत्त्वाधार जो सर्वाधार है, को देखने का अधिकार उसे है जो भक्ति करता है, प्रेम करता है और प्रेम मनुष्य ही कर सकता है।

स्वामी बैठक अद्भुती, राधा निरखन हार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार॥

उसकी सुन्दरता को, उसके वैभव को, उसके प्यार को अनुभव करने वाला कौन है? उसका अधिकारी कौन है? अरे राधा ही तो अधिकारिणी है राधा के अतिरिक्त और कोई भी अधिकारी नहीं है।

सन्त जो आये हैं क्या वह माया में नहीं थे? माया को आप स्त्री मान लो। वो क्या सन्त माँ से पैदा नहीं हुए? जितने अवतार हुए हैं, वह सब माया से पैदा हुए हैं। जितना महत्त्व माँ का है, उतना पिता का नहीं है। ईसाई लोग जीज़स क्राइस्ट को अपना अवतार मानते हैं। कहते हैं कि जीज़स ने एक कँवारी लड़की के पेट से जन्म लिया और खुदा उसका पिता था। एक सिद्धान्त यह भी है कि बिना कामवासना के भी बच्चा पैदा हो सकता है। अब आप सोचो कि ईश्वर को भी जन्म लेने के लिए माँ की ज़रूरत है। यदि पिता नहीं है, तो कोई बात नहीं। अब बताओ कि राधा ज्यादा ज़रूरी है या स्वामी। एक भक्त कवि ने लिखा है :—

यदि न होता राधा का रकार।
तो राधे श्याम आधे श्याम रह जाते॥

यदि राधेश्याम में से र हटा दिया जाये तो आधेश्याम रह जायेगा। अब समझो कि राधा ही प्रकृति है, राधा ही माया है। अगर तुम राधा को ग़लत समझोगे, तो गिर जाओगे। यदि तुम माया को भक्ति समझकर अपनी पूर्णता

की ओर देखोगे, तो तुम्हें समझ आ जायेगी और दुनिया की हर चीज़ के अन्दर तुम्हें आनन्द आयेगा। यही बात दाता दयाल जी महाराज ने आज के शब्द में कही है :—

सुनो मेरे भाई कथा ये पुरानी ।
नहीं जानते आजकल जिसको ज्ञानी ॥

दाता दयाल जी महाराज सच्चाई बता रहे हैं :—

नहीं ब्रह्म माया में है भेद कोई ।
जो है ब्रह्म माया भी है वस्तु सोई ॥

'सुनो मेरे भाई कथा ये पुरानी' आधुनिक युग में सन्तों ने अपने शिष्यों के साथ कोई न कोई रिश्ता कायम किया। यदि हम कबीर साहिब के पदों पर ध्यान दें, तो उन्होंने 'साधो' शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने सत्संगियों को 'साधो' कह कर सम्बोधित किया है। स्वामी जी महाराज ने गुरु और शिष्य के रिश्ते को पनपाया है। स्वामी जी महाराज के शिष्य हज़ूर राय सालिग राम जी महाराज ने अपने शिष्यों से पिता और पुत्र के सम्बन्ध को माना है। दाता दयाल जी महाराज ने भाई शब्द का प्रयोग किया है, जैसा कि आज के शब्द में आया है या अन्य शब्दों में भी आता है। परम दयाल जी महाराज ने 'दोस्तो' शब्द का प्रयोग किया है वह सत्संगियों से कहते थे "मेरा तुम्हारा रिश्ता दोस्ती का है लेकिन मेरे बाद जो आयेगा वह प्रेम से आप पर हकूमत करेगा।" हर सन्त का तर्ज़े बयाँ अलग-२ होता है। लेकिन यह रिश्ता अपने में पूर्ण होता है। स्वामी जी महाराज ने गुरु और शिष्य के रिश्ते को बहुत सुन्दर ढंग से पनपाया है। शिष्य कैसा होना चाहिए ? सालिग राम जी जैसा और गुरु स्वामी जी महाराज जैसा। सालिग राम जी महाराज कई मील दूर से, स्वामी जी महाराज के लिए पानी भर कर लाते थे। एक बार स्वामी जी महाराज ने

कहा "सालिगराम ! तुम मुझे दो महीने तक मत मिलना न मेरे कमरे में आना।" जैसा मैंने सुना है कि सालिग राम जी महाराज एक हफ्ते भी नहीं रह सके। एक दिन सीढ़ी लगाकर रोशनदान से स्वामी जी महाराज के कमरे में झाँक रहे थे। स्वामी जी महाराज ने देख लिया। अपने कमरे में बुलाकर अपनी खड़ाऊँ सालिग राम जी महाराज को उठाकर मार दी। खड़ाऊँ लगते ही सिर से खून बहने लगा। स्वामी जी द्रवित हो उठे और अपना हाथ सालिग राम जी महाराज के सिर पर रख दिया उस समय सालिग राम जी महाराज ने कहा :—

"गुरु धरा शीश पर हाथ मन क्यों सोच करे।
गुरु रक्षा हरदम साथ क्यों न धीर धरे॥"

प्रत्येक सन्त का कहने का अन्दाज़ अलग है लेकिन चीज़ वही है। पुरानी शराब नई बोतलों में है।

सुनो मेरे भाई कथा ये पुरानी।
नहीं जानते आजकल जिसको ज्ञानी॥

शुरू से ही माया और ब्रह्म का झगड़ा चला आ रहा है कि माया अलग है और ब्रह्म अलग है। ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् झूठा है। इस चक्कर में वेदान्ती मारे गये। वाचक वेदान्ती रह गये। आजकल के लोग जो अपने आपको ज्ञानी समझते हैं, उन्होंने अनुभव तो किया नहीं, और अपने को ज्ञानी समझ बैठे हैं। दाता दयाल जी महाराज अपने अनुभव के आधार पर आगे कह रहे हैं :—

नहीं ब्रह्म माया में है भेद कोई।
जो है ब्रह्म माया भी है वस्तु सोई॥

ब्रह्म और माया अलग नहीं हैं। काल भी माया ही है। माया ब्रह्म का स्वरूप है। माया अपने आप में क्यों

नहीं अच्छी लगती ? क्योंकि वह एक तो ब्रह्म की Radiation अर्थात् किरण है, दूसरे वह छोटे रूप में है और ब्रह्म बड़े रूप में है। बूँद समुद्र है । उसका गुण समुद्र का है, लेकिन देखने में, आकार में छोटी है। इसलिये बूँद को हम समुद्र तो नहीं कहेंगे, लेकिन समुद्र वाले गुण उसके अन्दर मौजूद हैं। इसी प्रकार माया ब्रह्म का एक स्वरूप है, एक धारा है। एक धारा से लाखों, करोड़ों जगत् बन गये। इस दृष्टि से माया वही चीज़ है, जो ब्रह्म है।

माया ब्रह्म का भेद है न्यारा।
भेदवाद है भरम कथा ॥

माया को बिलकुल अलग निकाल देना बड़ी मूर्खता की बात है। क्योंकि माया तो ब्रह्म के ऊपर खड़ी हुई है वह ब्रह्म को छुपाती है। लेकिन वह है परमतत्त्व। इस जगत् में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो ब्रह्म के बिना अस्तित्व रखती हो। जो कुछ माया है, वही ब्रह्म है, लेकिन उसका रूप बदला हुआ ज़रूर है। इस बात को जो समझ जाता है, उसको माया नहीं सताती। जो माया को झूठा समझकर कहते हैं कि दुनिया छोड़ दो, वह मालिक के पास नहीं पहुँच सकते। माया ब्रह्म से निकली है। माया ब्रह्म की शक्ति है। उसके कई रूप हैं। माया का भक्ति रूप भी है और शक्ति रूप भी है। शक्ति तो क्रोध में अन्धी भी हो जाती है, लेकिन भक्ति विजय पाती है। भक्ति स्वयं ब्रह्म का हिस्सा होकर उसमें विलीन हो जाती है। इसलिये ब्रह्म और माया का भेद भ्रम है और कुछ नहीं है।

जो कोई इसका रूप पहिचाने, भेदवाद है धरम कथा।

यदि आपको यह पता लग जाये कि माया जो हमें अलग दिखाई दे रही है, वास्तव में अलग नहीं है, बल्कि परमतत्त्व का अंश है, तो आप मालिक के पास आसानी से

पहुँच जायेंगे। आपको किसी भी धर्म के सिद्धान्तों पर चलना असूलों पर चलना आसान हो जायेगा। लेकिन जगत् को झूठा मान लेते से आपका काम नहीं बनेगा। एक सत्संग में परम दयाल जी महाराज ने कहा था कि सन्तों का कहना है कि काल बड़ा ज़ालिम है। इसका मतलब यह है कि जगत् के अन्दर जो कर्म-सिद्धान्त हैं, उससे कोई भी छुटकारा नहीं पा सकता। जैसे जज को लोग ज़ालिम कहते हैं क्योंकि यदि उसके बेटे ने कत्ल किया है, तो जज उसको भी फाँसी दे देगा। इसी प्रकार काल के अन्दर जो कर्म का नियम है, वह किसीका लिहाज़ नहीं करता। इसलिये सन्तों ने काल को ज़ालिम कह दिया।

यदि असलियत में देखा जाये, तो काल अपने आप में कुछ नहीं है। काल तो दयाल का स्वरूप है। अगर परम-तत्त्व दयाल मनुष्य बनकर इस जगत् में नहीं आये, तो किसी काम का नहीं है। इसलिये काल में आने वाला परम-तत्त्व हमारे काम का है अर्थात् हमारे लिए फायदेमन्द है, लेकिन ऊपर बैठा हुआ फायदेमन्द नहीं है।

दृष्टि सृष्टि का सकल पसारा, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।
भक्ति की दृष्टि जब आई, ईश्वरमय हो गई सृष्टि॥

जब व्यक्ति में भक्ति और प्रेम की दृष्टि आ जाती है तब उसे पता चलता है कि यह जगत् जो उस मालिक की धारा है वह सुन्दर है जब मैं उस मालिक से प्यार करता हूँ, तो क्या उसकी धारा से प्यार नहीं करूंगा? अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि यदि मेरे से प्यार करते हो, तो मेरे कुत्ते से भी प्यार करो। आप गुरु से प्यार करते हो, उसे दक्षिणा भी देते हो। क्या गुरु को तुम्हारी दक्षिणा की आवश्यकता है? तो क्या किया जाये? तो जो गुरु का काम है, जिसमें गुरु को रुचि है, वही करो। लोग आते हैं, पूछते हैं "महाराज

जी ! आपको कौन-सी सब्ज़ी पसन्द है ?" यह उनका प्रेम है। परम दयाल जी महाराज ने मुझसे कहा था कि दुःखी जीवों को रास्ता दिखाओ। उनको सत्संग दो। यदि मैं उनसे प्यार करता हूँ तो उनका आदेश मानना मेरा कर्त्तव्य है। इसलिये मैं उनकी आज्ञा को मानकर सत्संग देता हूँ और सत्संगियों से प्यार करता हूँ। यदि आप मालिक से प्यार करते हो तो उसकी बनाई हुई प्रकृति जो बहुत सुन्दर है उससे नफ़रत कैसे कर सकते हो। मालिक के पास जाना चाहते हो, और प्रकृति को कहते हो कि वह कुछ नहीं है तो तुम मालिक के पास कैसे जा सकते हो ? तुम स्वयं भी तो प्रकृति में मौजूद हो। यदि तुम्हारी आँख, कान और ज़ुबान न होते तो तुम तीन बन्द कैसे लगाते ? मालिक ने तुम्हें सब कुछ दिया है। मालिक का सबसे बड़ा चमत्कार यह क्या है ? मालिक का सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि माया के अन्दर तुम्हें मनुष्य-शरीर दिया है। तुम्हारे प्राण चल रहे हैं। तुम जीवित हो। यह बड़ा भारी चमत्कार है। अगर तुम्हारा प्रेम मालिक से नहीं है और सिर्फ प्रकृति से है, पैसे से है, दुनिया से है, तब तुम दुःखी रहोगे। तुम्हारे में भक्ति की दृष्टि नहीं आयेगी।

'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' जो लोग नास्तिक हैं वह कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। हमें शरीर मिला है, इसलिये खाओ, पियो और मौज उड़ाओ। चारसौबीसी करो, पैसा कमाओ। शराब पियो। ऐसे लोग शरीर के सिवाय और किसी अस्तित्व को नहीं मानते। ऐसे लोग निशाचर हैं। अगर उनको यह ज्ञान हो जाये कि शरीर के पीछे मन है, मन के पीछे आत्मा है और आत्मा के पीछे वह अंश है, जो मालिक का स्वरूप है, तो वह ईश्वर के अस्तित्व को मानने लगेंगे। आप समाधि लगाते हैं। जब आप अन्तर में जाते

हैं तो सहस्रदल कमल के पीछे एक ज्योति का दर्शन करते हैं। त्रिकुटी में ॐ अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव का दर्शन करते हुए सुन्न में जाते हो। यहाँ गुरु और शिष्य रह जाते हैं, यहाँ अन्धेरा होता है। महासुन्न में बिलकुल कुछ नहीं होता लेकिन फिर जागृति आ जाती है। आगे भँवरगुफा के अन्दर दीपक दिखाई देते हैं और सोहम् सुनाई देता है। इसका अर्थ है कि मालिक भी है और मैं भी हूँ। इस दर्जे में सुरत कभी ऊपर जाती है, कभी नीचे आती है। इसके बाद सत्-पुरुष के दर्शन होते हैं। सत्पुरुष की सुन्दरता की व्याख्या करते हुए स्वामी जी महाराज ने कहा, "मैं उसकी सुन्दरता के बारे में क्या कहूँ? उसका एक-२ बाल इतना सुन्दर तथा चमकदार है कि करोड़ों सूर्य उसके सामने फीके पड़ जाते हैं।" जब ऐसे सुन्दर सत्पुरुष के साथ तुम प्यार करोगे तो तुम्हारा ध्यान संसार की चीज़ों पर नहीं जायेगा। जब सद्गुरु को सत्पुरुष मानकर प्यार करोगे तो दुनिया को वो चीज़ें जो आपको दुःख देती हैं; दुःख नहीं देंगी। संसार की समस्त चीज़ें आपको उपलब्ध होंगी। ईश्वर अथवा सत्पुरुष के प्यार का यह मतलब नहीं कि तुम घरबार छोड़कर आ जाओ। उसका प्यार इतना व्यापक है कि वह तुम्हारे घट के प्यार को बढ़ायेगा, घटायेगा नहीं। उसका प्यार अनन्त है। इस प्यार से क्या होगा?

भक्ति की दृष्टि जब आई, ईश्वरमय हो गई सृष्टि।

जब भक्ति का प्यार आयेगा तो पत्नी और बच्चों में भी ईश्वर दिखाई देगा।

जो सत् है वही सुख वही चित् है प्यारे।
कथन के लिए तीन हैं एक सारे॥

सत्, चित्, आनन्द अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शरीर, मन, आत्मा माया ही तो है। सत् का मतलब है जीवन या

अस्तित्त्व है। चित् का मतलब है उसका ज्ञान होना अर्थात् आत्मचेतना। आनन्द का मतलब है उसके कारण शरीर में रहना, सुख का अनुभव करना। जहाँ सत् होगा वहीं जीवन होगा। जहाँ जीवन होगा, वहाँ चित् होगा। जब जीवन ही नहीं है, तो चित् कहाँ से होगा, ज्ञान कहाँ से होगा? क्या मरे हुए आदमी को ज्ञान होता है? जो सत् है, वह चित् है दाता दयाल जी महाराज फरमा रहे हैं कि जहाँ शरीर है वहाँ चित् है, चित् शरीर के बिना नहीं हो सकता और सत् बिना चेतना के नहीं हो सकता। अगर चेतना ही नहीं, तो सत् किस बात का? कई बार ऐसा होता है कि कई आदमियों को बीमारी हो जाती है। वह न खा सकते हैं न पी सकते हैं। उनकी ज़िन्दगी एक पौधे की तरह होती है। जहाँ चित् नहीं, वहाँ जीवन नहीं। जहाँ सत् नहीं, वहाँ जीव नहीं, चेतना नहीं। अब बात रही आनन्द की। जब हमारी सुरत गहरी नींद के अन्दर मन से निकल कर, आत्मा में चली जाती है, उस समय कोई चेतना नहीं होती है। उस समय चेतना नहीं, शरीर का भान नहीं, सुख-दुःख भी नहीं, लेकिन उस समय आनन्द की अवस्था होती है। लेकिन जब हम उठते हैं, तो कहते हैं कि आज आनन्द बहुत आया। कहने का मतलब यह है कि अचेतन अवस्था में भी चेतना थी, तभी तो आनन्द का अनुभव हुआ। वरना बिना चेतना के आनन्द का अनुभव कैसे होता? सत्, चित् और आनन्द एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं क्योंकि तीनों उस पूर्ण से निकले हैं, जिसको हम सुरत कह रहे हैं, अर्थात् अविनाशी साक्षी कह रहे हैं। जो हमेशा रहने वाला तत्त्व तुम्हारे अन्दर है। इसलिये सत्, चित्, आनन्द कहने के लिए तो अलग-२ हैं, लेकिन ये तीनों उसीसे निकले हैं और उसीके द्वारा अनुभूत होते हैं।

करम सत् में और चित् में है ज्ञान की गम।
यही आत्मा में है आनन्द उत्तम ॥

सत् क्या है? सत् है शरीर। शरीर का धर्म है, कर्म करना। जब तक शरीर है, तब तक मालिक से प्यार करो, शरीर से किसी दुःखी की सेवा करो, घर वालों की सेवा करो, गुरु की सेवा करो।

साधु की संगत गुरु की सेवा सहज ही काम बनावे।

आपको शरीर कर्म करने के लिए, सेवा करने के लिए मिला है, निकम्मे बैठने के लिए नहीं मिला। चित् में ज्ञान है। सुख और आनन्द आत्मा का लक्षण है। इस प्रकार शरीर का कार्य है—कर्म करना। चित् का कार्य है ज्ञान देना और आत्मा का काम है आनन्द देना। आत्मा-शरीर और चित् से ज्यादा स्थायी है। आत्मा, शरीर और चित् का आधार है। यदि तुम खुश रहोगे, तो आत्मा में रहोगे। यदि तुम दुःखी और निराशावादी रहोगे तो आत्मा में नहीं रहोगे और तुम्हें दुःख ही दुःख होगा। जब भी तुम्हारे ऊपर मुसीबत आये तुम खुश रहो। अगर तुम खुश रहते हो तो तुम्हारी आत्मा उन्नत होगी। तुम आत्मा के द्वारा भी परमतत्त्व से मिल जाओगे। मैं अपनी कक्षा में विद्यार्थियों से कहता था कि मेरी कक्षा में हँसते-मुस्कराते हुए चेहरे होने चाहिएँ। इस बात पर सब हँस पड़ते थे। मैं आपको सच कह रहा हूँ कि जो आदमी मुर्झाया हुआ है उसकी Radiation दूसरों को भी मुर्झा देगी। ऐसा आदमी दुहरा पाप करता है। स्वामी रामतीर्थ का कहना है कि हिन्दु धर्म में या सनातन धर्म में कोई पाप, पुण्य नहीं होता। हाँ, यदि कोई पाप है, तो वह उदास रहना है। अरे तुम आनन्द के बेटे हो। आनन्द के वारिस हो, आनन्द तुम्हारी विरासत है। तुम पूर्ण हो फिर चिन्ता किस बात की। हमारे ऋषियों

ने अपने सारे अनुभवों का निचोड़ ईशोपनिषद् में रख दिया—कहा मालिक पूर्ण है। तुम पूर्ण हो। जगत् पूर्ण है फिर कहा 'ईशावास्यम् इदं सर्वम्' आनन्द का घर। 'यत् किंचित् जगत्यां जगत्' अरे घबराते क्यों हो? तुम्हारी दृष्टि के ऊपर मोतिया बिन्द चढ़ गया है। सारे जगत् के अन्दर, मालिक का वास है। 'यत्किंचित्' जड़, चेतन जो कुछ भी है, सबके अन्दर ईश्वर है। फिर कहते हैं—'तत् त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अरे खुशी में रहो, आनन्द को भोगो। लेकिन शर्त है—'त्यक्तेन' कुर्बानी करके आनन्द लो। किसी दूसरे के भाग को मत लो। पैसा आये, इस्तेमाल करो। सम्पत्ति का उपभोग करो, लेकिन उसमें फँसो नहीं। मन से त्याग करो। 'भुञ्जीथाः' दुनिया में तुम आनन्द लेने आये हो, तुम मूर्ख हो जो दुःखी हो रहे हो। तुम्हारी अपनी ग़लती है। आगे कहा 'मा गृधः कस्य-स्विद् धनम्' किसी दूसरे की सम्पत्ति तथा दूसरे के पैसे का लालच मत करो। लालच बुरी बला है। लालच में बड़े-२ सन्त महन्त मारे जाते हैं। लालच की कोई सीमा नहीं है। एक मगध का राजा था। सारे भारत पर छा गया। उसके पास धन, सम्पत्ति, हीरे, जवाहरात आदि सब कुछ था। किसी चीज़ की कमी नहीं थी। सारी प्रजा सुखी थी।

एक दिन दरबार में वज़ीरों ने कहा, "महाराज आपके क्या कहने हैं? आपके पास सब कुछ है। आपका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। लेकिन नेपाल आपके कब्ज़े में नहीं है। वह भी यदि आपके कब्ज़े में आ जाये, तो कितना अच्छा रहे। आपकी शान और भी बढ़ जाये।" राजा ने कहा, "ठीक है हम नेपाल को भी अपने आधीन कर लेंगे।" राजा लोभ में आ गया। उसने हुकुम दिया कि नेपाल पर चढ़ाई की जाये। सेनाएँ नेपाल के अन्दर घुस गईं। नेपाल

के लोग सीधे-सादे थे। उनका मोटा खाना, मोटा पहिनना था। उनके पास हथियार भी नहीं थे। सेना गाँव के गाँव रौंदती हुई आगे बढ़ रही थी। कुछ लोग भागकर राजा के पास गये और कहा, "महाराज यह क्या बला आ गई, हम तो मर रहे हैं।" राजा ने अपनी फौजें लड़ने के लिए भेजीं लेकिन वे युद्ध में कट मरीं। अब राजा ने सोचा कि हार मानने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। राजा ने दरबारियों की सभा बुलाई और पूछा इस मुसीबत से कैसे छुटकारा मिल सकता है? दरबार में एक बूढ़ा ब्राह्मण बैठा था। उस ब्राह्मण ने कहा, "महाराज! मेरे पास एक ऐसा जादू है, जिससे मैं इस बला को रोक सकता हूँ। आप उनसे सन्धि कर लीजिये और मैं सन्धि करवाऊंगा। आप मुझे मगध के राजा को उपहार में देने के लिए कुछ चीज़ें दे दीजिये।" नेपाल के राजा ने ब्राह्मण को कुछ उपहार देने के लिए दे दिये।

वह ब्राह्मण मगध के राजा के पास गया। राजा की बड़ी प्रशंसा की। कहने लगा, "महाराज हम गरीब लोग हैं। हम मोटा खाते हैं और मोटा पहनते हैं। आप हमें क्षमा करें। हमारे महाराज आपसे सन्धि करना चाहते हैं। आपके लिए कुछ उपहार दिये हैं। कृपा करके इन्हें स्वीकार करें।" राजा ने देखा कि उपहार में ऊनी कम्बल, सूखी मेवा आदि चीज़ें थीं। मगध के राजा ने कहा, "हमारी तरफ से भी अपने राजा को तोहफे देना।" राजा ने तोहफों में मशीनें, ज़री के कपड़े आदि दिये। ब्राह्मण ने कहा, "महाराज! आप यह चीज़ें दे रहे हैं, हम लोग तो इनका प्रयोग भी करना नहीं जानते। हम सीधे-सादे लोग हैं। मोटा खाते और मोटा पहनते हैं। हमें इन चीज़ों का कोई फायदा नहीं है।" राजा ने कहा, "तो तुम्हें क्या चाहिए?"

ब्राह्मण ने कहा "महाराज ! हमारे यहाँ सोना नहीं होता। हमने सोना कभी देखा भी नहीं है कि कैसा होता है आप कृपा करके थोड़ा सा सोना दे दीजिये।" राजा ने कहा, "अच्छा ! तुम्हें कितना सोना चाहिए।" ब्राह्मण ने अपनी जेब से एक छोटी सी पोटली निकाली। उस पोटली में से एक छोटी सी डिब्बी निकाली। उसमें से एक बहुत छोटी सी हड्डी निकाली और कहा, "इस हड्डी के बराबर सोना दे दीजिये।" तराजू लाई गई और उस हड्डी के बराबर सोना रखा गया। लेकिन हड्डी भारी थी। यहाँ तक कि खज़ाने का सारा सोना चढ़ गया, मगर हड्डी भारी थी। सभी हैरान थे। राजा ने कहा, "यह तो कोई चमत्कार है।" ब्राह्मण ने कहा, "महाराज ! न तो यह चमत्कार है न जादू है। असल में यह हड्डी एक लालची व्यक्ति की खोपड़ी की छोटी सी हड्डी है। ऐसी हज़ारों हड्डियाँ उसकी खोपड़ी में हैं। आपके पास दुनिया की सब चीज़ें हैं। मगर आपने नेपाल को जीतना चाहा, जहाँ कुछ नहीं होता। लालच की कोई हद नहीं है। यह सुनकर राजा को उद्‌बोधन हुआ और उसने नेपाल को आज़ाद कर दिया।

किसी के धन की तरफ लोभ मत करो। मनुष्य लोभ कब नहीं करेगा, जब उसे यह पता चल जायेगा कि वह पूर्ण है, मुकम्मल है। यदि फिर भी मनुष्य लालच करता है, तो धिक्कार है उसके पूर्ण होने पर। तुम अपनी पूर्णता को पहिचानो। तुम्हारी पूर्णता का कारण परमतत्त्व है, जो शरीर में आया हुआ है। शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा ये चारों मिलकर मनुष्य को सुखी बनाते हैं।

जहाँ तक वहीं, वही सुख है व्यापा।
जो तीनों को समझे लखे अपना आपा॥

मैं आपको आसान से आसान तरीके से समझाने की कोशिश कर रहा हूँ। सत्, चित्, आनन्द जहाँ तुम्हारा

अस्तित्व है, वहीं पर ज्ञान है। जहाँ अस्तित्व है, ज्ञान है वहाँ आत्मा है। जहाँ चित् है, वहाँ शरीर है। लेकिन इन तीनों का आधार, इन तीनों का मालिक, इन तीनों में अनुभव करने वाला, वो परमतत्त्व है जो तुम्हारा असली आपा है। जब इसको पहिचान जाओगे, तब तुम्हें पता लगेगा कि सत्, चित्, आनन्द अलग-२ नहीं हैं। सत्, चित्, आनन्र लक्षण हैं। समुद्र की बूंद के अन्दर भी सत्, चित्, आनन्द है। समुद्र का आपा जो है, वह बूंदों से परे है। वह ही समुद्र का असली आपा है। इसी प्रकार सत्,चित्, आनन्द से परे जो परमतत्त्व है, वही आपका असली आपा है। हम उस तरफ क्यों जा रहे हैं ? क्योंकि सत् ठोस है। यह हरएक के अन्दर सीमित है। जैसे किसी की उम्र 20 साल है, किसी की 50 साल है, किसी की 75 साल है आदि-२। लेकिन हम चाहते हैं कि हमारा जीवन बना रहे। कोई मरने को तैयार नहीं होता। लोग श्मशान में जाते हैं, दूसरे को जलता हुआ देखते हैं, लेकिन नहीं सोचते कि हम भी मरेंगे। हमें भी जलाया जायेगा। यह बात मैं किसी बुरी दृष्टि से नहीं कह रहा हूँ। हम क्यों नहीं सोचते कि हमें मरना है। क्योंकि तुम्हारी आत्मा कह रही है कि मृत्यु है ही नहीं। तुम अमर हो। सत् हमेशा रहने वाला है। लेकिन हम उसे सौ वर्ष के लिए ही लाये हैं। जो परमतत्त्व है, उसीसे हमारा सत् आया है वह अमरत्व है। इसी तरह से चित् है। हमारे अन्दर जो ज्ञान है, हम चाहते हैं कि हमें ज्यादा से ज्यादा ज्ञान हो। लेकिन इस जीवन के अन्दर ज्ञान की भी सीमा है। अब रही सुख की बात। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसका सुख स्थायी हो, लम्बे से लम्बे समय तक हो। लेकिन सुख स्थायी नहीं होता। इस जगत् के अन्दर सुख की भी सीमा है। लेकिन जिस स्रोत से वह

आया है, वहाँ सुख अनन्त है।

सुख-दुःख से एक परे परम सुख, सो सुख रहा समाई।

हमारे शरीर, मन, बुद्धि के अन्दर जो सुख है, वह सीमित है। लेकिन जो सुख आधार से आया है, उस आधार में तो अथाह है। तुम बूँदें हो जो समुद्र से आई हो। बूँदें फिर समुद्र में जायेंगी। मेरी प्यारी बूँदो! बूँद कह रही है कि प्रीतम से आये हैं, प्रीतम के पास जायेंगे। जब हम प्रीतम में मिल जायेंगे, तब हमें असली घर मिलेगा। यह मतलब है सत्, चित्, आनन्द का। बूँदों के अन्दर जो सत्, चित्, आनन्द है, उसके पीछे जो तुम्हारा असली समुद्री अंश है, वह उसको समुद्र की तरफ ले जाना चाहता है। उसको ले जाने के लिए सद्गुरु आकर तुम्हें सच्चाई बताता है।

इसी आपे का रूप अपना समझना।
समझकर न अज्ञान में फँस भटकना॥

जब यह समझ में आ गया कि तुम समुद्र की बूँदें हो, वह तुम्हारे अन्दर लहरा रहा है। तुम्हारा असली अंश शरीर, मन, आत्मा के कार्यों को देखता हुआ आनन्द से एक सिनेमादर्शक की तरह से बैठा हुआ है। दृश्य आयेंगे और जायेंगे। लेकिन वह जो तुम्हारा आप तुम्हें दिखाता है, वह निजरूप है, अविनाशी है। यदि वह अविनाशी है, तो नाशवान् जगत् से डरना क्यों? मरने से घबराना क्यों? तुम अविनाशी हो। कोई निन्दा करेगा मेरे शरीर की, लेकिन मैं तो शरीर नहीं हूँ। मैं तो कोई और चीज़ हूँ। मैं निन्दा से, गालियों से क्यों डरूँ? तुम आनन्द से रहो। तुम आनन्द से कब रहोगे, जब तुम्हें यह पता लग जायेगा कि तुम अविनाशी हो। यही अवस्था राधास्वामी अवस्था है, राधास्वामी हालत है। तुम भूल गये हो, तुम सो रहे हो, तुम्हें चेताने के लिए परमतत्त्व अविनाशी जो अमूर्त है,

जिसको देखा नहीं जा सकता, जिसको कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं कहते हैं लेकिन वह सब कुछ बन करके, मनुष्य के चोले में आकर तुम्हें चेताता है और जगाता है। तुम्हें बताता है कि **जब तुम इस आपे को पहिचान लोगे, तब** तुम्हें कुछ करने-धरने की ज़रूरत नहीं रहेगी।

करे गुरु की संगत समझ तब ये आवे।
मिले राधास्वामी जुगत जोग पावे॥

इतना कहने के बाद भी अगर समझ में नहीं आया, तो फिर सत्संग में आओ और गुरु की संगत करो।

बूँद पानी में मिला दरिया बना क्या जुस्तजू।
ज़ात में जब मिल गया, वो फिर करे क्यों गुफ्तगू॥

लेकिन गुफ्तगू कर रहे हैं न।

सब जानत प्रभु की प्रभुताई।
बिना कहे भी रहा न जाई॥

गुरु की संगन में आओगे, तो वह उस बात को कहेगा, जो कही नहीं जाती। वह ज़ुबान से कहेगा। आँख से आपके ऊपर दृष्टि डालेगा। गुरु की एक मेहर की दृष्टि से तुम्हारा काम बन जायेगा।

साधु की संगत गुरु की सेवा, सहज ही काम बनावे।
जिस पर साधु की दृष्टि पड़ गई, फिर जग योनि न आवे॥

अरे तुम्हारी समझ में आये या न आये मगर गुरु की दृष्टि तो डलवाओ। उसकी मेहर की दृष्टि तुम्हारे ऊपर तब पड़ेगी, जब तुम पूरी तरह से तैयार हो जाओगे। तब तुम्हें वह मस्ती की शराब पिलाई जायेगी, जिसके लिए पैसे की ज़रूरत नहीं रहती।

सबकी साकी पे नज़र हो ये तो ज़रूरी है।
सब पर साकी की नज़र हो ये ज़रूरी तो नहीं॥

पीने वाले पैमाना लिए बैठे हैं, साकी पिला रही है। वह सुन्दर है। सबकी दृष्टि साकी पर है कि हमें पिलाये। लेकिन हम यह बात भूल जाते हैं।

सिर के बल आती है सुराही पैमाने के पास जब पैमाना खाली होता है, तब सुराही उल्टी होती है। जो पैमाना पहिले ही भरा है, उसे कैसे भरा जायेगा। लेकिन उसकी नज़र सब पर होती है। इसी प्रकार जिस सत्संगी के अन्दर प्रेम की तड़प ज्यादा होती है, जो अधिकारी होता है, उस पर सद्गुरु की मेहर की दृष्टि पढ़ती है।

करे गुरु की संगत समझ तब ये आवे।
मिले राधास्वामी जुगत जोग पावे॥

अभ्यास से भी ऊँची चीज़ है—गुरु के पास बैठना, उसकी कुरबत में रहना, उसके नज़दीक रहना। गुरु की संगत में रहने से आपको आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों भेद पता लग जायेगा। तुम्हें राधास्वामी हालत पता लग जायेगी। तब तुम्हें किसी युक्ति की ज़रूरत नहीं रहेगी। तुम प्रेममय हो जाओगे, फकीरमय हो जाओगे, मानवमय हो जाओगे, तुम दयालमय हो जाओगे। तुम्हारा लोक भी बन जायेगा और परलोक भी बन जायेगा। आज का सत्संग मैं यहीं पर समाप्त करता हूँ।

सबकी राधास्वामी!

कुटुम्ब

हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

ईश्वर ने कुटुम्ब रचा। जीव-जन्तु बस गये। मनुष्य का कुल भी बना और सब रहने लगे। ईश्वर जब देखने आया तो सभी आपस में लड़-झगड़ रहे थे। ईश्वर ने सबको मिलजुल कर रहने की शिक्षा दी और चला गया।

परन्तु लड़ाई बन्द नहीं हुई। ईश्वर फिर आया। उनकी इस हालत से प्रसन्न नहीं हुआ और उन्हें फिर से मिलजुल रहने को कहा और चला गया।

तीसरी बार ईश्वर फिर आया उसने देखा कि लोग फिर से लड़-झगड़ रहे हैं, उसने फिर से सबको मिलजुल रहने को कहा। तब एक बोला "यदि आप फलाँ-२ को सृष्टि से निकाल दें, तो शान्ति हो जायेगी।"

ईश्वर ने कहा, "किस-२ को निकालूँ और निकले हुए कहाँ रहें? कुटुम्ब के सदस्य कुटुम्ब से तो बाहर रह नहीं सकते। ईश्वर चला गया।

लोगों की समझ में बात नहीं आई। ईश्वर एक बार फिर आया और सबको लड़ते-झगड़ते ही पाया। फिर उसे वही बात बताई गई कि फलाँ को निकाल दो।

ईश्वर बोला, "निकालने में निर्बलता और साथ रहने से बल मिलता है।"

परन्तु किसी ने समझा नहीं और ईश्वर वापिस चला गया।

ईश्वर फिर आया इस बार बहुत से मनुष्यों ने किसी

विशेष की बहुत निन्दा की। ईश्वर ने समझाया, "देखो। एक-२ बूंद से ही समुद्र बनता है। एक-२ करके यदि सब बूंदें निकल जायें तो समुद्र समुद्र नहीं रहेगा।" यह कह कर वह चला गया।

सातवीं बार जब ईश्वर आया तो इस बार भी उसने सबको लड़ते-झगड़ते ही पाया और उस विशेष को निकालने की प्रार्थना की। तब ईश्वर बोला, "आप सब शब्द का साधन करो, मेरा रूप देखो और मेरा नाम लो।"

इस बार सबने ईश्वर की बात मानी। ईश्वर का रूप जब देखा तो महसूस किया कि जिसकी वह निन्दा करते थे, वह भी ईश्वर से गुथा हुआ है, उसी में है, उसी का है। उसको निकाल देने से ईश्वर का ही एक अंग निकल जायेगा। उनके हृदय में प्यार उमड़ा और वे एक-दूसरे से प्यार करने लगे और उनका लड़ना-झगड़ना बन्द हो गया। अब ईश्वर का कुटुम्ब सुख और आनन्द से रहने लगा, निन्दा करने की उनकी बुरी आदत छूट गई और आपस की खटपट भी बन्द हो गई।

शोक समाचार

बड़े दुःख के साथ सत्संगी जन को सूचित किया जाता है कि मानवता मन्दिर के भूतपूर्व सेक्रेटरी एवं वरिष्ठ आचार्य श्री मुन्शी राम जी भगत की धर्मपत्नी श्रीमती कर्म देवी का निधन 20-10-90 को सायं 3-40 बजे हो गया।

मानवता मन्दिर तथा समस्त मानव परिवार देवी जी के निधन पर गहरा शोक प्रकट करते हुए मालिकेकुल राधास्वामी दयाल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करें तथा शोकाकुल परिवार को इस दुःख की घड़ी में सहनशक्ति दें।

जनरल सेक्रेटरी

परमपुरुष पूर्णधनी हजूर मानव दयाल जी महाराज को राजेश कुमार गुप्त, मैनेजर स्टेट बैंक का पत्र।

आगरा,
21-9-90

परमपूजनीय मालिकेकुल, मेरे इष्ट, मेरे सद्गुरु, मेरे आधार आपके चरण-कमलों में इस दास का साष्टांग दण्डौत और राधास्वामी ! मेरे मालिक मैं आपसे कल फरीदाबाद में मिला और प्यासा ही रह गया। आपने सारा सत्संग मेरे ऊपर दिया जो शंका, प्रश्न और जिज्ञासा लेकर मैं गया था सभी आपके दर्शन करते ही भूल गया लेकिन आपने कहा कि गंगा के पास जाकर बैठने से ही काम नहीं बनता उसके समीप जाओ, उसमें डुबकी लगाओ और सारूयता और सायुज्य हो जाओ। लेकिन मालिक मेरे वश में यह सब करना भी नहीं है जब आपकी मेहर होगी मेरी डुबकी तो तभी लगेगी। आपने ही तो कहा था कि राजेश मैं तुझे बन्द डब्बे में लेजा रहा हूँ। मुझे तो आपके ऊपर विश्वास है। मैं तो जो भी करता हूँ आपको अर्पण कर देता हूँ। मुझे कुछ नहीं पता कि मैं क्या कर रहा हूँ क्योंकि मैं तो बन्द डब्बे में हूँ। फिर आपने कहा कि संसार को 24 घण्टे देते हो और मालिक को 10-15 मिनट, तो यह काफी नहीं है। मेरे मालिक मेरी बहुत तमन्ना है कि मैं कम से कम एक घण्टा आपके ध्यान में बैठूँ लेकिन मेरे कर्म, मेरे संस्कार, मेरे विचार मुझे पटकते रहते हैं। नीचे गिराते रहते हैं। मैं बहुत नीच, दुष्ट, कपटी, क्रोधी, लालची, कामी, व्यभिचारी, अहंकारी, द्वेषी और लम्पट हूँ लेकिन जैसा भी हूँ आपकी शरण में हूँ और अपने सब दोष आपको लिखित में

बताकर, यद्यपि आप अन्तर्यामी हैं, आपकी शरण में आया हूँ। मुझे आपके सिवाय अपने आप पर भी भरोसा नहीं है। सिर्फ आप ही एक ऐसी विभूति हैं जिनको मैं अपना कहता हूँ। वरना तो मैं अपने आप भी अपना नहीं हूँ। आपने कहा था कि आप समाधि लगाने की युक्ति बतायेंगे। मालिक, मैं तो 8 वर्ष से, जब से आपकी शरण में आया हूँ तब से ही तरस रहा हूँ, व्याकुल हूँ कि समाधि क्या होती है? कैसे लगती है? उसमें क्या अनुभव होते हैं? यह सब जानने के लिए। लेकिन बस यही सोचकर कि जब मालिक की मौज होगी, जब मेरा मन पवित्र होगा, जब मुझे वे इस लायक समझेंगे, तभी दात बख्शेंगे, यही सोचकर शरणागत हो जाता हूँ। वैसे मेरा अन्तर्मन कहता है कि मैं अपनी इच्छा व्यक्त कर दूं आपके सामने, लेकिन सामने सब भूल जाता हूँ। मालिक, वैसे मेरे बारे में, मुझे लगता है आपने देर कर दी। मगर मैं ऐसा नहीं समझता, क्योंकि मुझे तो अब सभी तरफ आप ही नज़र आते हो। यह बात दूसरी है कि जब मैं सोचता हूँ तभी महसूस करता हूँ वरना तो सामान्य प्राणियों की तरह ही बरताव करता हूँ। मेरे स्वामी, इस पत्र को लिखने का मेरा उद्देश्य यह है कि जो बात मैं ज़ुबान से नहीं कह पाता उसे आप तक इस पत्र के ज़रिये पहुँचा दूं। कृपया मुझे मेरा पता बता दो, मैं कहाँ से आया हूँ? कौन हूँ? क्यों आया हूँ? और यह उल्टे-सीधे कार्य क्यों कर रहा हूँ? मेरा मन आपके चरणों में क्यों नहीं लगता? मैं क्या करूँ और क्या न करूँ (Does & Donots) कि मैं आपको अपने अन्दर समाविष्ट कर लूं ताकि "तू और मैं" का झगड़ा ही समाप्त हो जाय और जब चाहूँ आपके दर्शन कर लूं? अगर यह मुमकिन नहीं है तो मुझे मेरा ही रूप दिखा दो कि मैं इस शरीर में क्या हूँ और कैसे उस

अविनाशी तत्त्व को पकड़ूँ जो मेरे अन्दर रहते हुए भी मुझे दिखाई नहीं देता। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। आपका दिया हुआ सभी कुछ है, यद्यपि यह सब कुछ न मेरा था और न मेरा है और न मेरे साथ ही जायेगा बल्कि अस्थायी है जो किसी और का है और मुझे सिर्फ थोड़े समय के लिए इस्तेमाल करने की इजाज़त है। इसलिये इन सब झमेलों में तो मुझे उलझाओ मत। मुझे तो सीधे-सादे निजधाम निजस्वरूप और निजनाम की पहिचान करा दो, लखा दो। आप मेरे लिए ही अवतरित हुए हैं, इसलिये आप मुझे जितनी जल्दी मंज़िले मक़सूद पर पहुँचा देंगे, मैं उतना ही शुक्रगुज़ार हूँगा, लेकिन समय से पहिले नहीं, पात्र बनने से पहिले नहीं और किसी भी दबाव में नहीं। जब तक मैं इस काबिल न बन जाऊँ, तब तक मुझे कोई आशीर्वाद भी न देना। हाँ मुझे काबिल बनानें के लिए आशीर्वाद अवश्य दीजिये।

मेरे प्राणाधार मैं 8 वर्षों में पहिली बार दशहरा पर देहली नहीं आ रहा हूँ, क्योंकि मुझे अपने Brother-in-law के गृहप्रवेश के अवसर पर भिलाई जाना पड़ रहा है। मुझे इस धृष्टता के लिए क्षमा करें। मुझे इस बार का दशहरा का सत्संग Miss करना बहुत खल रहा है क्योंकि इस बार आप मुझे Nursery से K.G. में दाखिल करते लेकिन खैर मैं इस कमी को पूरा करने के लिए इंतज़ार करूंगा और मुझे उम्मीद है कि मेरी इच्छा शीघ्र ही पूरी होगी जब आप आगरा आकर मुझे शारीरिक सेवा का अवसर देंगे और मुझे कृतार्थ करेंगे।

परम पूजनीया जगत्-जननी स्नेहमयी माता जी के श्रीचरणों में बारम्बार शीश झुकाकर राधास्वामी। सभी

सत्संगी भाइयों और बहनों को राधास्वामी। आपके चरण-कमलों में मेरा साष्टांग राधास्वामी !

आपका अपना
राजेश

पत्र द्वारा सत्संग

(परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज का उत्तर राजेश के नाम)।

होशियारपुर
4-10-90

मेरे आत्मांश राजेश,
राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

तुम्हारी अपनी हस्ती कुछ नहीं। तुम बेकार ही बार-२ यह लिख रहे हो कि तुम कमज़ोर हो, पापी हो, लम्पट हो। जब तुम्हारी हस्ती ही मेरे अन्दर है और मैं तुझसे अलग नहीं हूँ, तो तुम मुझे ही यह गालियाँ दे रहे हो। अपने मन से तुम यह भूत निकाल दो कि तुम अपूर्ण हो, अपवित्र हो, अज्ञानी हो। मेरे शरीर से सम्पर्क करते ही, मेरी आँखों से आँख मिलाते ही, मेरी सत्संग की वाणी सुनते ही तुम शुद्ध, पवित्र, पूर्ण और ज्ञानमय हो गये हो। यह सब तुम्हारे उस प्यार का फल है, जो तुम्हें बार-२ मेरी ओर खींचता है। तुम सिवाय प्यार के और कुछ नहीं करो। अपना कर्त्तव्य निभाते चलो और थोड़ी देर तक एकान्त में बैठकर "राधा-स्वामी" नाम का अजपाजाप तथा सुमिरन और मेरा ध्यान किया करो। जब तुम सत्संग में मेरे सामने बैठते हो, तो मुझे आभास होता है कि तुममें कोई कमी नहीं है। तुम्हारी ई माँग नहीं है। उस समय तो आँखों के द्वारा भी

तुम्हारा तार मेरे साथ जुड़ जाता है। वास्तव में तुम हमेशा के लिए मुझसे जुड़े हुए हो, युक्त हो, अविभक्त हो और इसीलिये भक्त हो। तुम्हारे अचेतन मन में तो तुम्हारी इस युक्त अवस्था का तुम्हें 24 घण्टे आभास रहता है। तुम बेकार में दुःखी होते हो—केवल चेतन अर्थात् जाग्रत अवस्था में। तुम इस प्रेम और भक्ति के परिणाम अपने जीवन में देख भी रहे हो, किन्तु भूल जाते हो। तुमने अपने 21 सितम्बर के पत्र में, जो मुझे curfew आदि के कारण आज मिला है, लिखा है कि तुम दशहरे पर नहीं आ रहे हो। अरे मेरे प्यारे देख मैं भी दशहरे पर पहिली बार दिल्ली नहीं गया। किसके प्यार की शक्ति बड़ी हुई? तुम्हारी या मेरी। बस इससे ही तुम्हें अभय, निश्चल, अडोल और आनन्दमय हो जाना चाहिए क्योंकि तू मुझमें है, तेरी अपनी हस्ती नहीं है।

अपूर्णता के, दुःख के, निराशा के सभी विचारों को बहिष्कृत कर दो, क्योंकि ऐसा न करने से तुम मुझे ही गालियाँ दे रहे हो। शेष तेरे पत्र आने पर या मिलने पर। तुम्हें और तुम्हारे परिवार को हार्दिक आशीर्वाद और राधास्वामी!

आपका फकीरमय
मानव

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको जून के महीने तक की सूचना दी थी। 8 जुलाई को गुरुपूर्णिमा का उत्सव आयोजित था। सत्संगी 5 दिन पहिले से ही दूर-२ से आना शुरू हो गये। इसलिये सत्संगों का सिलसिला 4 जुलाई से ही आरम्भ हो गया। इस दौरान में एक बहुत शुभ घटना जो मानवता मन्दिर में हुई, वह था एक आदर्श मानव विवाह यह आदर्श विवाह यू० पी० के आचार्य श्री कृष्ण मोहन श्रीवास्तव की सुपुत्री कु० कुञ्जलता और आचार्य शब्दानन्द जी के सुपुत्र श्री न्यायेन्द्र प्रकाश के बीच हुआ। इस शुभ विवाह के अवसर पर आचार्य श्री कृष्ण मोहन श्रीवास्तव का सारा परिवार, लखनऊ के आचार्य श्री कृष्ण मोहन तिवारी, देहली के आचार्य श्री केशव प्रसाद वर्मा, मोदी नगर के आचार्य श्री एस० डी० शर्मा, राजस्थान के आचार्य कैप्टिन लाल चन्द विशेषकर सम्मिलित होने के लिए पहिले ही पहुँच गये थे। 7 जुलाई को यह शुभ विवाह सायंकाल वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। आज तक जितने

मानव विवाह हुए हैं, वे सत्संगियों को प्रेरणा देने वाले हैं। मानव विवाह की विशेषता यह होती है कि इसमें कोई औपचारिकता नहीं होती और यह बहुत सरल रीगि से बिना किसी बाहरी आडम्बर के आयोजित किया जाता है। सप्तपदी के बाद वर और वधू मानवता मन्दिर में महाराज जी से आशीर्वाद लेते हैं और राधास्वामी की प्रेमग्रन्थि में बँध जाते हैं। आशा है कि ऐसे मानव विवाह सर्वप्रिय हो जायेंगे। आप सब ऐसे विवाहों पर उपस्थित होकर बहुत प्रसन्न होंगे। यदि सभी वर-वधुओं के माता-पिता इस तरह के विवाहों को प्रोत्साहन दें तो भारत की एक बहुत बड़ी समस्या सुलझ जायेगी।

8 जुलाई को प्रातःकाल 7 बजे से ही गुरु-पूजा आरम्भ हुई और साढ़े आठ बजे मानवता मन्दिर के बड़े हाल में सत्संग आरम्भ हुआ। सारा हाल सत्संगियों से भरा हुआ था क्योंकि भारत के कोने-२ से सत्संगी सम्मिलित होने के लिए पहुँच गये थे। प्रातःकाल और सायंकाल दोनों सत्संगों में सत्संगी बहुत आनन्दित हुए। मेरे अलावा आचार्य कैप्टिन लाल चन्द जी ने, आचार्य के० पी० वर्मा ने, आचार्य शब्दानन्द ने, आचार्य कृष्ण मोहन श्रीवास्तव ने, आचार्य श्री कृष्ण मोहन तिवारी ने सत्संग देने में सक्रिय भाग लिया। आचार्य कैप्टिन लाल चन्द जी का अनुभवपूर्ण सत्संग गुरु की पराभक्ति पर अत्यन्त आकर्षक और प्रेरणा देने वाला था। इस प्रकार सभी सत्संग सत्संगियों के लिए लाभदायक सिद्ध हुए। दोनों समय के सत्संग के दौरान में सभी सत्संगी समाधिस्त अवस्था में दिखाई दे रहे थे। सत्संगियों के ठहरने का और भण्डारे का प्रबन्ध बहुत सराहनीय था। इसका श्रेय मानवता मन्दिर के जनरल सेक्रेटरी श्री सरदारी लाल सेठी को है, जिन्होंने कई दिनों तक अपना अमूल्य समय देकर

इस उत्सव की सुचारु व्यवस्था की और दूसरे ट्रस्टियों को भी प्रबन्ध का उत्तरदायित्व दिया। सत्संगी 11 जुलाई तक मानवता मन्दिर में रहे। मैं आपको यह बताना भूल गया कि जुलाई के पहिले सप्ताह में हम दो दिन के लिए हमीरपुर के सैशन जज श्री जानेश्वर गोयल के निमन्त्रण पर वहाँ एक छोटे से सत्संगदौरे पर गये। इन दो दिनों में जज साहिब के घर के अलावा परम दयाल जी की सुपुत्री श्रीमती सुषुम्ना और उनके सुयोग्य पति श्री क्रान्ति कुमार के घर पर तथा श्री पी० डी० गोयल चीफ जुडिशियल मजिस्ट्रेट के घर पर भी सत्संग आयोजित हुए।

13 जुलाई तक मानवता मन्दिर की गतिविधियों में मैं व्यस्त रहा और 14 जुलाई प्रातःकाल मैटाडोर के द्वारा चण्डीगढ़, लालरू और अम्बाला होते हुए देहली के लिए रवाना हो गये। लालरू तथा अम्बाला में थोड़ी देर के लिए रुके और सायंकाल 8 बजे तक आचार्य श्री के० पीं० वर्मा के निवासस्थान पर राजपुर रोड देहली पहुँच गये। यहाँ पर बहुत से सत्संगी पहिले से ही मौजूद थे। इन सबको आशीर्वाद और परामर्श देने के बाद रात्रि को विश्राम किया। 15 जुलाई को सायंकाल सल्वान पब्लिक स्कूल में विदाई सत्संग हुआ, जिसमें देहली और बाहर के सत्संगी बहुत भारी संख्या में सम्मिलित हुए। इस अवसर पर भी आचार्य कैप्टिन लाल चन्द, आचार्य के० पी० वर्मा, आचार्य शब्दानन्द, आचार्य एस० डी० शर्मा सम्मिलित हुए। इस अवसर पर यू० पी०, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश से भी सत्संगी आये हुए थे। यह देखकर मुझे हमेशा मेरे परमप्रिय सत्संगियों के प्रेम और उनकी श्रद्धा की भावना की सराहना करनी पड़ती है। इसी कारण मैं भी आपके प्रेम से ओत-प्रोत होकर सत्संग देते समय समाधान हो जाता हूँ।

सन्तमत की विशेषता यही है कि इसमें ईश्वर का साक्षात्कार सहज में होता है। जप, तप, संयम, नियम आदि सभी पराभक्ति में अपने आप ही सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये इस मार्ग को सहज मार्ग कहा जाता है। इस पन्थ पर चलने वाला साधक हज़ारों वर्षों के रास्ते को कुछ ही दिनों में तय कर लेता है। उसका मूल कारण यह है कि यह रास्ता सिर्फ ज्ञान या इल्म का नहीं है, बल्कि अमल एवं अभ्यास का रास्ता है। इसलिये इसको इल्मसफीना न कहकर इल्मसीना कहा जाता है यह करनी का मार्ग है, केवल वाचक ज्ञान नहीं है। इसलिये बार-२ कहा जाता है :—

यह करनी का भेद है न ही बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे तब पावे कुछ सार॥

कबीर साहिब के इस शब्द में यह साफ तौर पर कह दिया गया है कि केवल बुद्धि या चिन्तन पन्थाई को मंज़िले मकसूद तक नहीं पहुँचा सकता और ना ही केवल बातें बनाने या सुनने से साधक अपने लक्ष्य को पा सकता है। जब वह अनुभव करने के बाद कथन करेगा, तो उसका यह बोलना आन्तरिक प्रेम से ओत-प्रोत होने के कारण दूसरे को भी प्रेरणा देगा। जब सुनी-सुनाई बातों की ओर ध्यान न देकर अनुभवी सद्गुरु के सत्संग से प्रभावित होकर अपने अन्तर में सुमिरन, ध्यान, भजन करता हुआ राधास्वामी हालत अर्थात् समता और शान्ति की हालत का आनन्द लेकर समाधि से उठेगा तो उसे यह सच्चा ज्ञान हो जायेगा कि परमतत्त्व मालिकेकुल हर जीव में साक्षात् मौजूद है। ऐसा महसूस करने से साधक का ज्ञान व्यापक ज्ञान हो जायेगा और किसी धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सीमा में न रहेगा। इसी प्रकार उसका प्रेम भी शरीर, मन और बुद्धि तक सीमित न रहता हुआ व्यापक प्रेम

किन्तु इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए तीन सोपानों की ज़रूरत है, जिन्हें सत्संग,सद्गुरु और सतनाम कहा जाता है। मैंने पिछले मासिक सन्देश में सत्संग के बारे में चर्चा की है। इसलिये यहाँ पर दौरे की सूचना देने से पहिले राधास्वामी मत एवं मानवता धर्म के इन तीन सीपानों की सरल और सुगम व्याख्या एक बार फिर करना चाहता हूँ। यह सोपान इसी क्रम में अपनाये जाने से कुछ ही महीनों के अन्दर साधक कौ परमतत्त्व से मिला सकते हैं। शर्त केवल इतनी है कि इस व्याख्या को अपने जीवन में सच्चे दिल से और सद्गुरु के प्रेम और उसके प्रति श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत होकर रोज़ाना साधन किया जाये।

इससे पहिले कि मैं इस मासिक सन्देश में सीधे-सादे शब्दों में सत्संग की चर्चा शुरू करूँ और अगले मासिक सन्देशों में सिलसिलेवार सद्गुरु और सत्संग की चर्चा की जाये, मैं यहाँ पर सत्संग को पराभक्ति का आधार मानकर आपको एक नई बात बताना चाहता हूँ। वह यह है कि सत्संग, सद्गुरु और सतनाम तीनों ही सत्संग हैं। सत्संग का अर्थ ही पराप्रेम और पराभक्ति है। इन तीनों को अगर हम सत्संग के दर्जे कह दें, तो यह ग़लत नहीं होगा। सत्संग ही मनुष्य की छुपी हुई पूर्णता को निखारता है और उसे परमपद पर पहूँचा देता है। यही कारण है कि ना ही केवल सतनाम में बल्कि सनातन धर्म के सभी सम्प्रदायों में सत्संग की महिमा पर ज़ोर दिया जाता है। सत्संग शब्द संस्कृत के दो शब्दों सत् और संग से बना है। सत् का अर्थ अविनाशी तत्त्व अकालपुरुष परात्पर ब्रह्म अनामी या दयाल पुरुष है। उसीकी प्राप्ति के लिए जप, तप, संयम, नियम किया जाता है। उसीको पाने के लिए योगसाधना को अपनाया जाता है। उसीको मिलने के लिए सच्चे प्रेम और सच्ची भक्ति को जीतन

पर लागू किया जाता है। उसीकी खोज के लिए सद्गुरु को ढूंढ़ा जाता है। स्वामी जी महाराज ने ठीक ही कहा है।

'सतगुरु खोजो री प्यारी, जग में दुर्लभ रतन यही।'

आप खुद ही सोचिये कि सद्गुरु को खोजने या ढूंढ़ने का मतलब क्या है? सद्गुरु को मिलने पर, उससे प्रेम ही तो करना है और उसके वचन को श्रद्धापूर्वक सुनकर उस पर अमल करना है। इसलिये सद्गुरु के सम्पर्क में आना एवं उसका संग करना मनुष्य के जीवन को सफल बनाना है। दाता दयाल जी महाराज ने इसी विचार को स्पष्ट करते हुए कहा है :—

कर गुरु की संगत रात-दिन नर जनम अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से यम का शीश न भार ले॥

लगातार गुरु के नज़दीक रहने से ही उससे भक्ति और प्रेम का व्यवहार किया जाता है, जिसके फलस्वरूप सद्गुरु अपने प्यारे सत्संगी को अपना ही अंश समझते हुए, सच्चे साधन का रास्ता बताता है। एक बार फिर मैं आपको बताना चाहूंगा कि रात-दिन गुरु की संगत करने का मतलब चौबीस घण्टे उसे याद रखना और हर काम को करते समय उसीका सुमिरन करना है। यही नाम जपना या सतनाम की अवस्था है। दूसरे शब्दों में हम उसीका नाम हर समय जपते रहेंगे, जिससे हमें सच्चा प्रेम है। इस प्रेम में प्रीतम का नाम जपते-२ सत्संगी अपने आपको भूलकर स्वयं प्रीतम ही हो जाता है। इसीको जन्म का सुधारना कहते हैं। सुधार शब्द का अर्थ धारा से राधा बनना है। आम लोग धारा में बहे चले जा रहे हैं और विषय-भोग आदि को सुख का साधन मानकर अपने जन्म को निष्फल बना रहे हैं।

यहाँ पर 'सुधार' शब्द का मतलब अच्छी धार अर्थात् उल्टी धारा यानि कि राधा है। अपनी सुरत को विषय-भोग

आदि में बहने से रोक कर परमतत्व की ओर लगा देना अर्थात् धारा से राधा बन जाना ही जन्म को सुधारना है। इस सम्बन्ध में आगे चलकर पूरी व्याख्या की जायेगी। यहाँ पर केवल इतना ही कह देना काफी होगा कि सत्संग के प्रताप से ही साधक सतनाम की ओर बढ़ता है। सतनाम एवं समाधि ध्यान भी तो सद्गुरु से तब मिलता है जब सत्संग किया जाता है। हमारी इस व्याख्या से यह साबित हो जाता है कि सत्संग ही सद्गुरु और सतनाम के दोनों सोपानों का आधार है। यही कारण है कि गुरु की लगातार संगत और उसके प्रेम में शरीर, मन और आत्मा से परे पराभक्ति को पाया जा सकता है, जो मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य एवं परमार्थ है। इसी सच्चाई को बयान करते हुए दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज ने ठीक ही कहा है।

तू शीश दे तन मन को दे गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
राधास्वामी भेद बताया तुमको हियतराजू तोल ले॥

सत्संग की इस महिमा की चर्चा अगले मासिक सन्देश में जारी रखी जायेगी।

मैं आपको बता रहा था कि हम 19 जुलाई 1990 तक देहली में रहे। इसी दौरान हम एक बार मानवधाम भी गये और देखा कि वहाँ का निर्माण का कार्य महंगाई के कारण स्थगित हो गया है। किन्तु बहुत से उदार सत्संगियों ने फकीर सत्संग भवन के निर्माण के लिए सेक्रेटरी 'इण्टरनैशनल सोसाइटी आफ् ह्यमेनिज़म' श्री एस. डी. शर्मा क्वार्टर नं. 2 टीचर्स कालोनी मोदीनगर ज़िला गाज़ियाबाद यू. पी. को धनराशि भेजना शुरू कर दिया है। इसलिये बहुत शीघ्र ही मानवधाम के निर्माण का कार्य फिर से शुरू कर दिया जायेगा। प्रसंगवश सत्संगियों के लिए

मानवधाम के बारे में एक सुखद सूचना और मिली है और वह यह कि मानवधाम की प्रबन्धक कमेटी ने मानवधाम में प्लाट खरीदने वालों की माँग को देखते हुए कुछ और ज़मीन खरीद ली है। हालाँकि इस नई ज़मीन के लिए महंगाई के कारण खर्चा अधिक हुआ है, फिर भी सत्संगियों के लिए 250 गज़ के प्लाट की कीमत केवल 48 हज़ार रुपये ही ली जा रही है। क्योंकि मानवधाम सोसाइटी इस काम में कोई आर्थिक लाभ नहीं उठा रही। हमें सूचना मिली है कि केवल 15 या 16 प्लाट ही मिल सकते हैं। यदि किसीको अधिक सूचना लेनी हो, तो वह ऊपर दिये गये पते पर पूछ-ताछ कर लें। मोदीनगर का टेलीफोन नं. 2003 है। टेलीफोन पर भी बातचीत की जा सकती है।

मैं आपको बता रहा था कि विदेश रवाना होने से पहिले 19 जुलाई तक हम देहली में रहे और सत्संगियों को परामर्श देने का समय भी निकाला। 19 और 20 जुलाई की रात को हमें 2 बजकर 15 मिनट पर दिल्ली से लंदन के लिए रवाना होना था। इसलिये हम 12 बजे रात्रि तक इन्दिरा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँच गये। आचार्य के० पी० वर्मा का परिवार, आचार्य शब्दानन्द, हैदराबाद से श्री भगवान व्यास और कुछ सत्संगी हवाई अड्डे तक हमें विदा करने आये। हम उसी दिन प्रातःकाल 10 बजे के करीब लंदन पहुँच गये। इस बार लंदन हवाई अड्डे पर श्री किशोर गुप्ता के अतिरिक्त, श्री प्रकाश चन्द्र चौहान तथा उनके सुपुत्र भी हमारे स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर मौजूद थे। श्री राजीव पंडित अपनी कार लेकर हवाई अड्डे पर मौजूद थे। वह हमें सीधा अपने घर ले गये। यहाँ पर श्री किशोर गुप्ता, मैं और भाग्य माता जी दोपहर के भोजन तक रहे। श्री राजीव पंडित के घर पर

एक छोटा सा परिवारिक सत्संग भी हो गया।

उसी दिन सायंकाल हम बर्मिघम में श्री किशोर गुप्ता के घर पहुँच गये। रात के 11 बजे तक सत्संगियों का ताँता बँधा रहा। इस बार हम इंग्लैंड में केवल 5 दिन ही रहे। क्योंकि अमेरिका में 27, 28 जुलाई को सेण्ट पीटर्सबर्ग फ्लोरीडा में वहाँ की एक धार्मिक संस्था टैम्पल आफ लिविंग गौड (Temple of Living God) अर्थात् जीवित ईश्वर के मन्दिर में मेरा दो दिन का कार्यक्रम था। इसके अलावा वहाँ पर क्लीयर वाटर में भी एक नये गिरजाघर में तथा एक शहर हट्सन में मेरे सत्संग पहिले से ही आयोजित थे। बर्मिघम में 21 और 22 जुलाई को श्री किशोर गुप्ता तथा श्री बख्शीश सिंह के घरों के अलावा श्री दसौंदा सिंह के घर पर भी पारिवारिक सत्संग हुए। 22 जुलाई को प्रातः और सायं गीता मन्दिर में 2 विशाल सत्संग आयोजिह हुए। इन सभी सत्संगों में अधिकतर सनातन धर्म के अनुयायी सम्मिलित हुए। इसलिये मैंने सन्तमत की दृष्टि से भगबद्गीता के मत पर विशेष प्रकाश डाला। इन सत्संगों का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और कई लोग दूसरे दिन नामदान के लिए भी मेरे पास आये।

23 जुलाई को हम मानचैस्टर गये और वहाँ पर डा० कृष्ण मोहन खुराना के परिवार के साथ ठहरने के अलावा हम श्री ज्योति प्रकाश और उनकी धर्मपत्नी ईश्वर प्रकाश के घर पर भी गये। दोनों स्थानों पर पारिवारिक सत्संग हुआ। याद रहे कि श्री ज्योति प्रकाश ने पिछली बार मानवधाम के लिए काफी धनराशि का अनुदान दिया था। वह और उनकी धर्मपत्नी मानवता धर्म में विशेष रुचि रखते हैं और मानवता के असूलों पर चल रहे हैं। दोनों ही बड़े नेक निष्ठावान् तथा श्रद्धालु हैं।

24 जुलाई प्रातःकाल हम फिर बर्मिघम पहुँच गये। इस बार श्री दसौंदा सिंह ने विशेषकर अपने ध्यान में उन्नति के लिए आग्रह किया और उन्हें मैंने मार्गदर्शन दिया। श्री दसौंदा सिंह का परम दयाल जी महाराज में और मेरे में अगाध विश्वास है। मुझे पूरी आशा है कि बहुत जल्दी श्री दसौंदा सिंह जी अन्तर के दर्जों को पार करते हुए आध्यात्मिक उन्नति करेंगे। श्रद्धा और विश्वास अभ्यास की सफलता के लिए और साक्षात्कार के लिए बहुत ज़रूरी है। सिद्ध पुरुष भी अपने अन्तर में मौजूद ईश्वर का दर्शन श्रद्धा और विश्वास के बिना नहीं कर सकते। याद रहे कि श्री दसौंदा सिंह ने अपने विश्वास के आधार पर चमत्कारी अनुभव किये हैं। 1984 में हम दो बार इंग्लैंड गये। जब हम जाती दफ़ा वैस्ट ब्राउनविच में श्री जगदीश चन्द्र गुप्ता के यहाँ ठहरे, तो श्री दसौंदा सिंह अपनी पत्नी के साथ हमें मिलने के लिए आये, क्योंकि बर्मिघम वैस्ट ब्राउनविच से केवल दो मील दूर है। वह अपने साथ कैमरा ले आये क्योंकि इन्हें कैमरे द्वारा चित्र लेने का बहुत शौक है और वह इस कार्य में निपुण भी हैं। श्री दसौंदा सिंह ने जगदीश जी के घर के अन्दर और बाहर हमारे अनेक चित्र लिये। जब हम जगदीश जी के घर से रवाना होने लगे, तो उन्होंने उनके घर के बाहर सभी सत्संगियों के साथ हमारा आखिरी चित्र लिया ताकि उनकी फिल्म पूरी समाप्त हो जाये। किन्तु जब उन्होंने कैमरे का बटन दबा दिया, तो उन्हें पता चला कि उन्होंने लैन्स का ढक्कन ही नहीं उतारा था। इससे पहिले ही उन्होंने फिल्म Rewind कर दिया था। इसके बाद उन्होंने मुझे कहा, "महाराज बड़ी भूल हो गई। आखिरी चित्र तो आयेगा ही नहीं।" जब हम दो महीने के बाद भारत लौटते समय बर्मिघम गये,

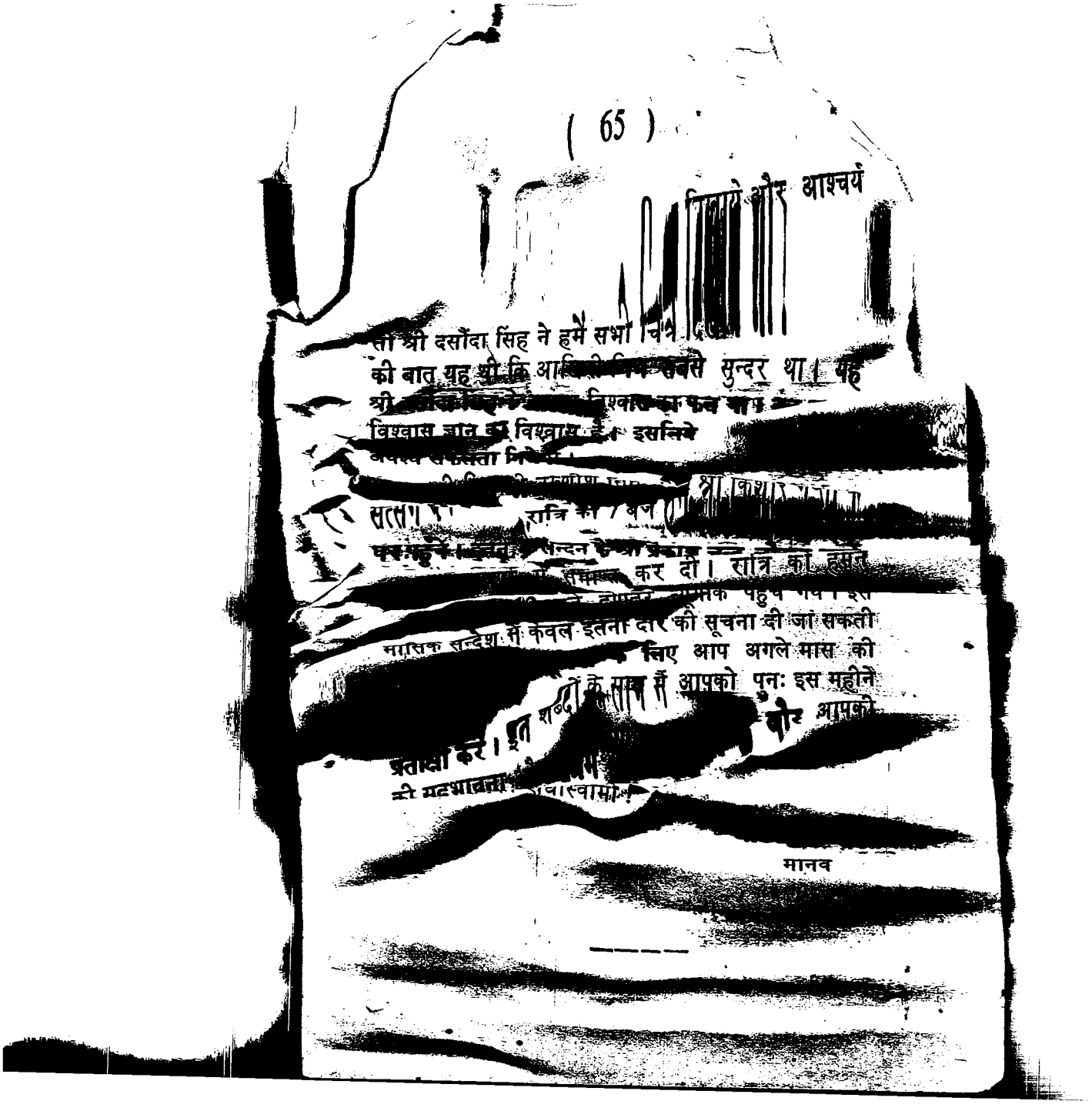

... ... और आश्चर्य

... श्री दसौंदा सिह ने हमें सभा चित्र ...
की बात यह थी कि आ... ...सबसे सुन्दर था। यह
श्री ... ...विश्वास का फल था ...
विश्वास ... विश्वास है। इसलिये
...सफलता मिली।
... ... श्री किशोर ...
सत्संग ... रात्रि को 7 बजे ...
... पहुँचे। ... सन्दन ... प्रकार ...
... समाप्त कर दी। रात्रि को हमने
... ... पहुँच गये। इस
... ...दार की सूचना दी जा सकती
मासिक सन्देश में केवल इतना ... लिए आप अगले मास की
... ...शब्दों के साथ में आपको पुनः इस महीने
प्रतीक्षा करें। इन शब्दों ... ... और आपको
... ...
श्री सदभावना ... राधास्वामी !

मानव

———

आवश्यक सूचना

सभी सत्संगी भाई-बहनों को स्मरण दिलाया जाता है कि फकीर सत्संग भवन, मानवधाम, गाजियाबाद के निर्माण के सम्बन्ध में हमारी अपील पर [illegible] 101/- रुपये के सहयोगदान का संकल्प किया था। काफी सत्संगी भाई-बहनों ने अपना 101/- रुपये का सहयोग राशि भेज दिया है। उन सबको सोसाइटी की [illegible]कारिणी की ओर से हार्दिक [illegible] सत्संगी भाई-बहनों ने अपनी [illegible] सहयोग राशि [illegible] [illegible] (600 [illegible]) [illegible] 101 [illegible] [illegible] ड्राफ्ट या चेक के जरिये [illegible] सुविधानुसार मनी-[illegible] की कृपा करें ताकि सत्संग भवन के रुके हुए काम को शीघ्र [illegible] किया जा सके।

सेक्रेटरी, [illegible] (पंजाब) 146001 के पते [illegible] [illegible] हुए जा[illegible] जायगा।

जनरल सेक्रेटरी

आवश्यक चेतावनी

विश्वस्त सूत्रों से मालूम हुआ है कि कुछ अनधिकृत लोग अपने आपको मानवता धर्म का आचार्य कह कर भोले-भाले सत्संगियों व प्रेमी जन से धन वसूल कर रहे हैं और उनमें जातिवाद का विष फैला रहे हैं, जब कि मानवता धर्म में जाति तो क्या, वर्ण, फिरका, लिंग, राष्ट्र और सम्प्रदाय तक में भेद-भाव नहीं किया जाता। अपने मानवपरिवार में तो सभी जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग, और राष्ट्र के लोग समान रूप से माननीय हैं। परमपुरुष पूर्णधनी हजूर मानव दयाल जी महाराज तो इन भेद-भावों से परे और ऊपर हैं। विश्व के अन्य महान् देशों में इनका कितना सम्मान है, यह निम्नांकित पत्र द्वारा स्पष्ट हो जाता है :

(न्यूयार्क, सं. रा. अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संस्थान के कार्यकारी निर्देशक श्री थामस जी. वाल्श द्वारा हिज़ होलीनेस हजूर मानव दयाल डा० ईश्वर सी० शर्मा जी महाराज को अंग्रेज़ी में लिखे गये पत्र का हिन्दी अनुवाद) :—

सितम्बर 12, 1990

प्रिय हिज़ होलीनेस डा० शर्मा :

रेवरेंड सी. एच. क्वाक और सम्पूर्ण अ. ध. संस्थान की ओर से मैं आपको, इतनी तत्परता और ज़िम्मेदारी से अन्तर्राष्ट्रीय विश्व-शान्ति संघ को लिखे गये पत्र के लिए, व्यक्तिगत रूप से धन्यवाद देना चाहता हूँ। विश्व-शान्ति की प्राप्ति के लिए आप ही जैसे जागरूक कर्मठ नेताओं की आवश्यकता है। आपकी अन्तर्दृष्टि और नेतृत्व दुनिया वालों के लिए एक आदर्श और प्रेरणाश्रोत है।

आपका हस्ताक्षरित आख्यान ग्रन्थित कर लिया गया है और उसे आई. एफ. डब्ल्यू. पी. संयोजकों को वाशिंगटन डी. सी. में प्रेषित कर दिया गया है।

विश्व-शान्ति की प्राप्ति के अभियान में इतना सच्चा सहयोगी मित्र होने के लिए आपको पुनः धन्यवाद।

आपका विश्वसनीय
हस्ताक्षर थामस जी वाल्श

उपर्युक्त आशय का पत्र हजूर मानव दयाल जी महाराज ने भारत के सभी प्रमुख नेताओं को भी भेजा था, किन्तु खेद की बात है कि राष्ट्र एवं विश्व-कल्याण के ऐसे महत्त्वपूर्ण पत्र का भी, केवल साम्यवादी पार्टी के नेता श्री नम्बूद्रीपाद के सिवा, किसीने भी उत्तर नहीं दिया। अपने देश के नेताओं में राष्ट्रहित और जन-कल्याण के प्रति ऐसा उपेक्षा-भाव ! इतनी संकीर्णता !! इतनी स्वार्थभावना !!! घोर चिन्ता का विषय है।

सत्संगी व प्रेमी जनों से हम अनुरोध और आशा करते हैं कि आप, मानवता के नाम को बेचने और बट्टा लगाकर निजी स्वार्थ सिद्ध करने वाले भ्रामक प्रचारकों के ग़लत प्रभाव में नहीं आयेंगे और अपने आपको आर्थिक व पारमार्थिक हानि व अनिष्ट से बचायेंगे।

यदि आपको किसी भी प्रकार की शंका या भ्रांति हो तो आप सीधे हजूर मानव दयाल जी महाराज को या उनकी अनुपस्थिति में आचार्य शब्दानन्द जी को, सीधे पत्र लिखकर अपना सही-सच्चा समाधान प्राप्त कर सकते हैं। नीचे आपकी जातकारी के लिए मानवता धर्म के आधिकारिक आचार्यगण की सूची दी जा रही है। आप केवल इनसे ही परामर्ष करें :—

मानवता धर्म के आचार्यों की सूची :—

1. आचार्य कैप्टिन लाल चन्द जी
2. आचार्य श्री कृष्ण मोहन श्रीवास्तव
3. ,, ,, केशव प्रसाद वर्मा
4. ,, ,, शब्दानन्द जी
5. ,, ,, सूर्य नारायण भट्ट
6. ,, ,, भूपेन्द्र मणि गुप्त
7. ,, ,, विजय नरेश नेगी
8. ,, ,, कृष्ण मोहन तिवारी
9. ,, ,, डा० परशु राम अग्रवाल
10. ,, ,, मनमोहन गुप्त
11. ,, ,, एस० डी० शर्मा

आचार्याओं की सूची :—

1. आचार्या श्रीमती लाजवन्ती देवी (कमालपुर वाली माई)
2. ,, ,, निर्मला पण्डित
3. ,, ,, गीताबाई शराफ
4. ,, ,, सावित्री देवी
5. ,, ,, रमा बाई

संयुक्त राज्य अमेरिका के आचार्यों की सूची :—

1. **आचार्य श्री विलियम रोडन हाइजर**
2. ,, ,, पीटर जोनेथान
3. आचार्या श्रीमती थेलमा कार्टर

सभी आचार्यों का सत्संगियों व प्रेमी सज्जनों से अनुरोध है कि परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज के अतिरिक्त आप किसी भी दूसरे आचार्यों या व्यक्तियों की न तो आरती-पूजन करें, न उन्हें चढ़ावे चढ़ावें क्योंकि यह सन्तमतपरम्परा व मर्यादा के विपरीत और हानिकारक है।

जनरल सेक्रेटरी

शिक्षाप्रद जीवन-घटनाएँ

हज़ूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

(1) 1903 में जब हम एक मित्र के साथ, जो कि एक रियासत के वज़ीर हैं, आर्य समाज का वार्षिक जलसा देखने लाहौर आये हुए थे, दोपहर के बाद हम दयानन्द हाई स्कूल की ओर से गुज़रे। एक बुढ़िया बाहर बैठी कह रही थी, "भला कर भला होगा।" वे शब्द हम कभी नहीं भूलते।

(2) मैंने पानी को एक दवा समझ रखा है। जब सिर-दर्द हुआ, हाज़मे में ज़रा भी उथल पुथल हुई, पानी पी लिया। शिकायत समाप्त हो गई।

(3) जो व्यक्ति किसीको छेड़ता है, वह चीज़ भी उसे छेड़ने का हौसला करती है। यदि तुम किसीके साथ मित्रता करते हो, तो मित्रता और शत्रुता करते हो तो शत्रुता मिलती है। अगर अपने दिल को मित्रता और शत्रुता, दोनों से पवित्र कर लो, तो न मित्रता न शत्रुता। न कोई किसी का शत्रु है न कोई मित्र है। यह सब मन का ही खेल है। दूसरे शब्दों में, मन ही शत्रु है, मन ही मित्र है। तुम अपने द्रिल से जैसे विचार, बाहर की ओर भेजते हो, वह तुम्हारी ही ओर वापिस आते हैं। छेड़ोगे, छेड़े जाओगे, दुःख दोगे दुःख पाओगे। नेकी करोगे नेकी पाओगे।

(4) मैं तो जहाँ देखता हूँ, एक ही एक दिखाई देता है। अन्दर, बाहर सब ओर एक है। तत्त्वों में देखो तो एक इन्द्रियों में देखो तो एक। अनेकता कैसी ?

(1) एक ही चीज़ उसके नाम कई, एक तत्त्व है उसके काम कई।
(2) पानी बूँद और भाप में देखा है, मकीम एक और मकाम कई।
(3) समय कहता है एक ही हूँ मैं, मुझमें हैं प्रातः और शाम कई।
(4) मय उरफा के पीने वालों को, मैकदा में मिलेंगे जाम कई।
(5) एक आवाज़ सुरतें बेहद, लबो लहजा कई, कलाम कई।
(6) विष्णु है एक व ज़ाते वाहद है, बुद्ध, नरसिंह, कृष्ण और राम कई।

अद्वैत का ख्याल द्वैत पर विजय पाना है। वास्तव में देखा जाये तो असलियत या वास्तविकता न द्वैत में है और न अद्वैत में। यथार्थता तो हममें ही है और उसी का नाम आत्मा है जो तुम स्वयं हो। तुम्हारी ही कल्पना कर लेने से यह संसार बना, जब यह तुममें लय हो गया तुम निर्द्वन्द हो गये। यह ही वेदान्त की शिक्षा का सार है। वेदान्त शुष्क फ़िलासफ़ी नहीं है जैसा कि बहुत से लोग समझते हैं मैं स्वयं वेदान्ती हूँ। वेद तथा शास्त्र मेरे आधार पर हैं, मैं उनके आधार पर नहीं हूँ। यदि तुम इस बात को समझ जाओ, तब तुमको एकपना, अद्वैत तथा आध्यात्मिकता के भाव को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

(5) हिन्दुओं में प्रथा है कि मुर्दे को खाट से उतार कर ज़मीन पर रख देते हैं। 1907 की बात है कि मेरे चचा प्रयाग दत्त साहिब बीमार पड़ गये और बच न सके। उनके अन्तिम समय पर मेरे पिता जी ने मुझे कहा "बेटा अपने चाचा जी को खाट से उठा कर मकान के बाहर ज़मीन पर रख दो, ताकि वह वहाँ दम तोड़ें।" मैंने पूछा कि ऐसा क्यों किया जाये। कहने लगे कि खाट बन्धन है, मकान के

छप्पर, छत्त सभी बन्धन हैं। इनमें रहकर जान देना ठीक नहीं। मैंने पिता जी की आज्ञा का पालन किया। उनको मकान के बाहर ज़मीन पर लिटा दिया गया। थोड़ी ही देर में उन्होंने प्राण त्याग दिये। देखो, इस बात में एक नुक्ता है। ज़िन्दगी तक यदि बन्धन है खैर! मरते समय तो यह न रह पाये। मरना तो सबको है और मरने पर सब कुछ छोड़ना ही पड़ेगा, तुम पहिले से ही सब कुछ क्यों न छोड़ दो? यह बहुत ही अच्छा होगा। इसी प्रकार मज़हब का सम्बन्ध है। जिस प्रकार तुम पुस्तक को पढ़कर, उसके सार को दिल में रखकर, पुस्तक से सम्बन्ध नहीं रखते हो, वही व्यवहार-धर्म के साथ भी होना चाहिए। कहने को तो यह बात बुरी लगती है कि धर्म से सम्बन्ध मत रखो, परन्तु यह सच्चाई है। जब मैं बुद्ध धर्म पर लिखता हूँ तो कौन कह सकता है मैं बौद्ध नहीं हूँ इसी प्रकार जब मैं वेदान्त या आध्यात्मिकता पर लिखता हूँ तो मेरे सूफी या सच्चे वेदान्ती होने पर कौन सन्देह कर सकता है इत्यादि? यह सब मेरे हैं और मैं उनका हूँ। यह सब मेरे ही ख्याल के भिन्न-२ रूप हैं। इसलिये मैं किसी भी धर्म का खण्डन कैसे करूँ? सबको अपने में और अपने को सबमें देखना सीखें।

शुभ सूचना

परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हज़ूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

— का —

वसन्त सत्संग—दौरा कार्यक्रम

	प्रात: सत्संग	सायं सत्संग
15-1-91	अहेरी	अहेरी
16-1-91	,,	(समय वहीं सूचित
17-1-91	,,	किया जायेगा)
18-1-91	सिरोंचा (अहेरी)	,,
19-1-91	आरमूर आगमन	,,
20-1-91	निज़ामाबाद, हनमकुण्डा आगमन	,,
21-1-91	हनमकुण्डा	,,
22-1-91	,,	,,
23-1-91	ज़फ़रगुड्डा	के. समुद्रा
24-1-91	करीम नगर (हज़ूराबाद होकर)	
25-1-91	पेड्डापल्ली	हैदराबाद आगमन
26-1-91	लक्ष्मी नारायण टे ग. बजार, सिकंदराबाद	आचार्य भवन, फ़ीलखाना
27-1-91	चितल बस्ती, संजैया आडिटोरियम रजत जयंती समारोह	वैदिक धर्म प्रकाश स्कूल, शालीवन्दा
28-1-91	हरि भवन, चार कमान	कबीर डेरा, गोशामहल
29-1-11	नागपुर आगमन	(समय वहीं सूचित किया जायेगा)

जनरल सेक्रेटरी

Regd. No. 26265/74
MANAV MANDIR

DEC. 10th 1990
NWHSP—7

Address

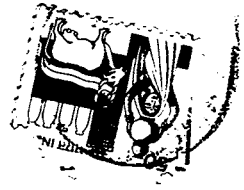

From :

MANAVATA MAN
SUTEHRI ROAD
HOSHIARPUR - 14 001

Shiv Dev Rao Press, Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)